

कैथी लिपि का इतिहास

भैरव लाल दास



लगभग चार सौ वर्षों तक बिहार और उत्तर प्रदेश के घर-घर में रहनेवाली कैथी लिपि के जाननेवालों की संख्या अब गिनी-घुनी ही रह गई है। कैथी जनलिपि के रूप में थी और इस अवधि में इसे राज और न्यायालय की भी मान्यता मिली। यह मैथिली, चोजपुरी, मगही सहित अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की लिपि भी थी। कैथी के संदर्भ में शोध करना और शोध को सरस साहित्य का रूप देना श्री वैराग लाल दास जैसे 'साधक' से ही संभव हो सकता था। मेरा विश्वास है कि यह किताब बिहार और उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय लिपि को जीवित रखने के संबंध में निति-निर्धारकों को एक नए ढङ्स का अवसर प्रदान करेगा। मैं इतना निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि अब कैथी लिपि अगले पाँच सौ वर्षों तक जीवित रहेगी।

श्री ताराकान्त झा
समापति,
बिहार विधान परिषद्





कैथी लिपि का इतिहास

ISBN-80-90484-78-5

आवृत्ति : प्रथम

शेरव लाल दास

आवृत्ति : प्रथम

प्रथम आवृत्ति

प्रथम

प्रथम आवृत्ति

प्रथम

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति

प्रथम आवृत्ति



भातलोड तऱ्हा पोली डिऱ्हा

ISBN- 978-81-910602-1-6

प्रथम संस्करण : 2010

संपादिका : लेखिका

आवरण : सुधी अलका

प्रकाशक : शारिका पब्लिकेशन्स
104, मुण्डेरधरी राजीव अपार्टमेंट
बुडा कॉलोनी, पटना - 800 001
दूरध्वनि : 0612-2520431

पुस्तक : इस्टर्न बुक एजेंसी
305 बुडा प्लाजा
मुंडा मार्ग, पटना-1
दूरध्वनि : 9334089207

मूल्य : 150/- (एक सौ पचास रुपये मात्र)

दादी, पूज्यपाद
स्व. पूर्णिमा देवी
को समर्पित



ਪ੍ਰਿੰਸਪਲ, ਸਿੱਖ
ਸੇਵਾ ਸਮੇਤ, ੧੪
ਸੰਨ ੧੯੧੮





अनुक्रमणिका

विशेष का इतिहास	: 02
कौशी विशेष का इतिहास	: 47
कौशी विशेष में धार्मिक ग्रंथ	: 58
कौशी के विभिन्न रूप	: 68
संस्कृत गुरी और कौशी विशेष	: 97
अंग्रेजी शासन में कौशी का विकास	: 104
कौशी का प्रयोग	: 105
कौशी, चमराही और रेवन्गारी	: 113
सरकार की नया नीति	: 119
कौशी का अवसान	: 136
और अंत में	: 140

रही है। भाषाओं की लिपियाँ अलग-अलग होती हैं और एक लिपि में जो कई भाषाएँ लिखी जाती हैं। उदाहरण के रूप में 'देवना' का 'देवनागरी' का नाम लिखा जा सकता है।

प्रत्युत पुस्तक में लेखक ने बिहार और उत्तर प्रदेश में सदियों से प्रचलित 'कौची' लिपि को सफलतापूर्वक पचास साल पहले तक चलाने में भी बड़ा विचार अथवा धन उपस्थित किया है। सामाजिक, आर्थिक और वैज्ञानिक विकास के दौर में लिपियों और भाषाओं का सम्बन्ध इसे बड़ा गहरा विचार है। संयुक्त राष्ट्र ने विश्व की एक हजार से अधिक भाषाओं की सूची तैयार की है जिसमें आधे भाषाओं के चलते चलते एक हजार से भी कम लोग हैं। मुनेस्को ने भारत में ही 196 भाषाओं का विवरण दिया है जिन पर सुझाव देने का कलम पड़ा रहा है। एक कठुआली देश के रूप में भारत मुनेस्को की सूची में सबसे ऊपर है। जहाँ की सामाजिक संबंधों काफ़ी समर्थित के ऊपर पर है। इसमें दो बातें हैं कि भाषा और लिपि की विविधता किसी समाज के समुन्नत सांस्कृतिक संबंध और समृद्धि की सूचक है। यह बीसवीं शताब्दी है कि राजनीतिक परतंत्रता के काल में यह कठुआली विविधता बरकरार रही, लेकिन स्वतंत्रता के बाद इस सांस्कृतिक परम्परा पर संकर पैदा हुआ है।

बिहार में जननीय - काफ़ीर संबंधों अधिकांश पुराने दस्तावेजों कौची लिपि में हैं। जननीय समाज और विशेषकर महिलाओं में 'कौची' लिपि का अधिक प्रचलन था। इस लिपि का अधिकार काफ़ीरता के द्वारा भंग कर दिया है इसलिए इस कौची लिपि के नाम से बहुत कुछ। शिक्षा और सम्पन्नता के साथ-साथ काफ़ीरता के लोग स्वतंत्रता के बीचे प्रचलन पर भी कुछ ऊपर की तीन जातियों के कोषाग्रहण में। इसलिए कालान्तर में 'कौची' सामाजिक-राजनीतिक बदलाव का शिकार हुई और इसे चलाने-कलाने वाला पड़ा। 'कौची' का स्थान 'कौची' लिपि ने ले लिया। जगदी लिपि के एक प्रमुख अंग्रेज़ी-कौची की अन्वेषण बिहार की बिहार के मुजफ़्फ़रपुर के ज़नेमाल में लेकिन जगदी प्रचलित समाज की स्थापना कौची में हुई और फिर जगदी ज्ञात रूप के प्रचलन में देवनागरी बन गयी। देवनागरी के कौची का कोई टकराव नहीं था, एक ही सूत्र में दोनों लिपियाँ समझकर चल सकती थीं, पर कौची कालों ने अपनी करतब अड़ी कर दी। इस तरह देवनागरी देवनागरी एक बीसवीं लिपि को भिन्न, सुदृढ़, अन्य भाषों के अक्षरों और जगदीयों के बीच सिंधु का ज्ञान कर रही थी, अन्वेषण समाप्त हो गयी।

मुझे इस बात का संतोष है कि इस पुस्तक के लेखक की पैरस रहल एक 'कौची' की अन्वेषण दौर पर कौची लिपि की जा रही है, लेकिन एक उत्तम एवं संजीव लेखक की तरह समयों और स्थानों के आधार पर कौची लिपि के इतिहास का बसुवारा विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं। इस पुस्तक में यह भी जगदीर की गयी है कि बीसवीं की तरह जगदीर और जगदीर भाषा की भी अन्वेषण अलग लिपि की जो समाज के प्रचलन में सुख हो गयी। इस तरह की पैरस उत्तरांचल की यह पुस्तक भाषा विज्ञान के विचारधर्मों एवं लेखकधर्मों द्वारा भाषा एवं लिपि के विकास में उच्च रचनेवाले लेखकों के निरूप अन्वेषण उपदेश है। इस रूप सामान्य को जगदी एवं जगदीर जगदी में कनेक्ट समाप्त निरीक्षण, देवनागरी विचार है।

सत्यमेव जयते

पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष
प्राध्यापक विभागाध्यक्ष

जगदी : उत्तरांचल, बिहार विभाग जगदी

लिपि का इतिहास

मानव जति को ज्ञान आविष्कारों में लिपि का प्रमुख स्थान है। यही सटीक सम्बन्धों में जगत् की स्थापना के साथ-साथ लिपियों का जन्म होता दिखाई देता है। मानव विकास का सबसे महत्वपूर्ण चरण है, भाषा और लिपि। यद्यपि भाषा और लिपि मनुष्य की जगत् के लिए अतिमहत्व में आती लेकिन जगत् के अस्तित्व को बचाने के लिए अत्यन्त महत्व में किसी लिपि को रूप में होना पड़ती है। निम्नलिखित भाषा में लिपि का जन्म ही मनुष्य की संवेदनशील प्रकृति रूप में उत्पन्न कर सकती है, यद्यपि यही मनुष्य की जगत् के लिए का कार्य करती है। मानव सम्पत्ति के विकास में, जगत् के लिए संवेदनशील का ही सबसे अधिक महत्व है। मानव का बहुमुखी विकास इस जगत् की लिपिबद्ध करने की कला को कारण ही हुआ। जगत् पर अपने जगत् को जगत् नहीं कर सकती हैं।

मध्यकालीन जगत् की जगत् जगत् और जगत् जगत् ने अपनी किताब 'मध्यकालीन जगत् लिपिबद्ध एनालिसिस' में उल्लेख किया है कि जगत् की जगत् रूप में स्थापित प्रदान करने जगत् जगत् प्रतीकों की परंपरागत व्यवस्था लिपि कहलाती है। जगत् की जगत् रूप में स्थापित प्रदान करनेवाले जगत् जगत् जगत् की परंपरागत व्यवस्था लिपि कहलाती है। इससे स्पष्ट है कि जिस प्रकार भाषा जगत् की व्यवस्था होती है, उसी प्रकार लिपि जगत् की। जिस प्रकार भाषा में जगत् और जगत् का सम्बन्ध प्रतीकात्मक होता है, उसी प्रकार लिपि में जगत् और जगत् का सम्बन्ध भी। जिस प्रकार भाषागत जगत् व्यवस्था परम्परागत होती है, उसी प्रकार लिपिगत जगत्-व्यवस्था भी। व्यवहारिक दृष्टि से दोनों एक दूसरे के लिए निरन्तर आवश्यक हैं। फिर भी लिपि के लिए जगत् अधिकारिता भाषा की है, जगत् भाषा के लिए लिपि की नहीं। तत्पर्य यह कि भाषा लिपि के बिना भी रह सकती है, किन्तु, भाषा के बिना लिपि निरर्थक रेखाओं और बिन्दुओं के अस्तित्व कुछ भी नहीं। फिर भी,

भाषा का समुचित विकास तभी संभव हुआ जब उसे स्वर-स्वरूप के साथ-साथ दृश्य स्वरूप भी प्राप्त हुआ। सभी का यह दृश्य रूप ही लिपि है। लिपिगत स्वरूप प्राप्त कर भाषा को मुख्य विकास के साथ-साथ व्यापकता का भी परचम मिल गया। यह देहा-कला की सीमा से मुक्त हो गयी।

लिपि ऐसे प्रतीक-चिह्नों का संश्लेषण है जिनके द्वारा मूल भाषा को दृष्टिगोचर बनाया जाता है। मुँह से बोलें गए शब्द या हाथ-पांव से व्यक्त किए गए चिह्नर बिस्मयावी नहीं रहते। ये वा अधिक व्यक्तियों के बीच में हुई बातचीत केवल इन्हीं व्यक्तियों तक सीमित रहती है। भाषा का आधार श्रवण है, इसे सुना जा सकता है। सुनी हुई या कही हुई बात केवल उसी समय और उसी स्थान पर उपलब्धी होती है। प्राचीन काल में मनब को अपने विचारों को सुरक्षित रखने के लिए लिपि का आविष्कार करना पड़ा था। लिपिबद्ध अध्वन या चिह्नर दिग् और काल की सीमाओं को लांघ सकते हैं।¹

लिपि के विकास

लोकान-काल को प्राचीन समय से ही पवित्र माना जाता रहा है। प्रायः सभी प्राचीन सभ्यताओं ने अपनी लिपियों के आविष्कारों के रूप में किसी न किसी देवता की कल्पना की है। प्रायः की सम्पत्ता थी कि लिपि के निर्माण कर्त्ता है, और शब्दर इसीलिए हमारे देहा के प्राचीन लिपि का नाम प्राकृती पड़ा था। धीरे-धीरे सभी को प्राचीन विश्व के लोकान का देवता प्राप्त जाता था। वेदोक्तों में लोकान का देवता नेत्रे था। प्राचीन यदुरी परंपरा के अनुसार लिपि के जनक वैश्वानर मूल थे। इसका भी सम्पत्ता है कि अल्फाबेट ने ही अक्षर बनाए और अक्षर को सीपे। डोमस को यदुरी लिपि का जनक माना गया है।²

मनुष्य ने जगत् पाली और लिपि काल में अर्पित की। फिर भी, सम्पत्ता के विकास में लिपि की देन भाषा की देन से कम लौकिकपूर्ण नहीं प्यवी जगती। 'दि हिस्ट्री ऑफ अल्फाबेट में एडवर्ड ब्लॉड ने इन विचारों की चर्चा की है और लिखा है कि यह श्रवण है कि मनुष्य ने सभ्यताविधियों तक अपने ज्ञान एवं चिन्तनविधियों की उपलब्धियों को यौक्तिक परम्परा में ही सुरक्षित रखा, किन्तु उस सम्पत्ता की एक सीमा थी। भाषा के आविष्कार ने यदि मानव जाति के लिए बर्धन से सम्पत्ता की और जननकाले पाल का उद्धार किया, तो लिपि के आविष्कार ने दूसरी और उसके निरन्तर विकास की असीम संभावनाओं के द्वारा को सदा-सदा के लिए सम्पत्ता कर दिया। इस प्रकार लिपि का आविष्कार मनुष्य के सौख्यकृत आविष्कारों में से एक माना जा सकता है।

लोकान-काल की उपलब्धि भाषा की उपलब्धि के बहुत करे हुई इस कारण, सभ्यताविधियों तक मनुष्य भाषा के माध्यम से अपने पदों एवं विचारों की अभिव्यक्ति तो करता रहा, किन्तु उनके संरक्षण का उसके पास कोई साधन नहीं था। इसका एक व्यापक दुष्परिणाम यह हुआ कि उस उपकार-कुल में न जाने कितनी ऐसी व्यक्तियाँ अपनी पाठ्यार्थों के साथ विश्व के रक्षण पर उपाधी और विलीन हो गयीं जिनका हम आज वाद तक नहीं जानते। और, दूसरा

नहीं किया होता है वह संसार जन्म तक जब भी किसी पुनर्जन्म में नहीं पहुँच सक्ता होता।
नारदस्मृति में वर्णित है कि :

नमोऽस्मिन्निह ब्रह्म विनिर्दिष्टं ब्रह्मसम्बन्धम् ।

तथैषामस्य स्वेकमस्य यथाविकल्पतः तदस्य यत्किञ्चिदिति ।

[illegible][illegible]

इतिहास इतिहासकार अन्वेषणों के अनुसार कई भाषाओं में भारतीय लेखन-कला को प्राप्त करने के विशेष कदम में पहिले काल में पुनः आविष्कार का सुविधा के लिए विशेष विचार। इतिहासकार ने अपने काम के लक्ष्य में लिखा है कि लेखन-कला का अनुसंधान सबसे पहले भारत में ही हुआ था। 'प्राचीन विश्वकोश' 'ज-ज-पू-तिन' में उल्लेखित है कि भारत की प्राचीन लिपि विद्या की सर्वोच्च पुनः सर्वोच्च लिपि है जिसका निर्माण 'ज-ज-पू-तिन' ने किया है। अन्वेषण में दो बड़े ही स्पष्ट कर से कहा गया है - 'है प्रतीति'। जो कुछ भी हुआ था लिखा गया है वह एक विशिष्ट काल में लिखा गया है, जिससे यह अर्थ है कि भारत में लिपि का उत्पन्न हो चुका है। 'एपोग' में भी एक ही उक्ति मुद्रिका अनुसंधान द्वारा भारत के सम्पूर्ण लिपि का उत्पन्न है, यद्यपि एपोग (लिपिकी कला) सुविधा परिलक्ष्य है, फिर भी, इस काल में लिपि का आविष्कार हो चुका था। महाभारत में इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख है कि पहिले काल में इस भाषा प्रयोग के लिखने के लिए लेखन-कला में प्रतीति 'विश्वकोश' और 'विश्व विद्यालय' गणेश के पुत्र है।

गुण्य स्थित

समस्या कोच-पञ्जीय इन्फर वर्ग करने का प्रयास गुणवर्ती में सहायक और प्रत्यक्ष जीवन

[illegible]

आज संसार में लगभग 400 विभिन्न लिपियों का प्रयोग होता है । इनमें से बहुतों का अंतरण एवं विकास प्राचीन भारत की कुछ प्रमुख लिपियों से हुआ है । जैसे एशिया के पश्चिमी छोर पर ई.पू. दुसरी सत्रहवीं शताब्दी में सेमिटिक (धारवी) भाषा परिवार के लिए एक अक्षरमालात्मक लिपि अस्तित्व में आई। 1000 ई.पू. के आसपास इस लिपि ने व्यवसायिक या वार्तामालात्मक रूप धारण किया । उस समय की इस लिपि को 'उत्तरी सेमिटिक', 'कन्नडी' या 'किनीशियन' जैसे नाम दिए गए हैं । दूनवी लिपि स्वतंत्र किरीलियन लिपि के अक्षर पर बनी थी । और, आज यूरोप, अफ्रीका और संसार के कई अन्य देशों में फिर लिपियों का प्रचार है जो इस दूनवी लिपि और इससे निर्मित सेंट या रोमन लिपि से ही विकसित हुई हैं । दूसरी ओर प्राचीन पूर्व की ओर, इस उत्तरी सेमिटिक लिपि ने अरबी, उर्दू, फारसी और अरबी जैसे लिपियों को जन्म दिया। इसके देस में लगभग छठी शताब्दी ई.पू. में अस्तित्व में आई ब्राह्मी लिपि ने भी बहुत-सी लिपियों को जन्म दिया है । भारत की सारी वर्तमान लिपियाँ (अरबी-फारसी लिपि को छोड़कर) ब्राह्मी से ही विकसित हुई हैं । हालांकि ही नहीं सिन्धली, तिब्बती तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की बहुत सी लिपियाँ ब्राह्मी से ही बननी हैं । लिपियों के इस विकास क्रम का वर्णन आगे विस्तार से किया गया है । आवश्यक नहीं कि यहाँ की तरह लिपियों की देशों और जातियों की सीमाओं को लांघती चली गई । धारकों की सीमाएँ लांघना ही लिपियों के लिए बहुत ही सरल काम रहा है। जो लिपि आरंभ में एक सेमिटिक भाषा के लिए अस्तित्व में आई थी, उसे बाद में फारसीय परिवार की अनेक भाषाओं के लिए अपना लिया गया ।

के उत्पत्ति मिलते हैं। जटन में वर्णित सम्पन्न ई०पू० छठे शताब्दी से भी पहले का है। 'महाभारत' ('विन्द्यापट्टक' का एक ग्रन्थ) में लेख (लिखना, गणना (पढ़ाई) और कृष (हिस्सा) की पढ़ाई का, ललित विस्तार में बुद्ध का लिपिशिल्पा में जाकर अध्यात्म विरचापित्र से बन्धन की पट्टी पर सोने के वर्णक (कल्प) से लिखना सोखने के युक्तन का वर्णन है। अंग्रेजी ने उपर्युक्त बौद्ध ग्रंथों का उल्लेख करने के पश्चात् लिखा है कि "उपर्युक्त उत्पत्ति ई०पू० छठे शताब्दी के आसपास की दशा के बोधक हैं और उनसे यह बात है कि उस समय लिखने का प्रकार एक आधारल था था। स्थिर और बल्ब की लिखन जल्द से और पढ़ाई ठीक वैसी ही थी वैसी कि अब तक हमारे यहाँ की पढ़ाई पाठशालाओं की है, जिनमें लिखन पढ़ाई पढ़ाई और हिस्सा पढ़ाई जाते हैं। अब हमारे यहाँ को प्रारम्भिक पढ़ाई का ढंग ई०पू० छठे शताब्दी से अब तक बिना किसी किसी परिवर्तन के यहाँ का तब तक रहा है। तब तक अग्रपर्व है कि बुद्ध के समय की बहुत पूर्ववर्ती काल से वैसा ही चल आ रहा हो।

पश्चात्ति लेखन कला की जल्द प्रगति के उपर्युक्त प्रागैतिहासिक भारतीय प्रमाणों के अधिकृत ऐतिहासिक प्रमाणों का भी सम्बन्ध नहीं है। ई०पू० 326 में जब अलेक्जेंडर ने भारत पर आक्रमण किया तो उसके साथ उसका एक सेनापति 'निस्त्राकस' भाग्य बधिरा भी था। 'निस्त्राकस' ने 'इण्डिका' नामक अपने विवरण ग्रन्थ में भारतीयों द्वारा कई से सामान्य बगाने का उत्पत्ति किया है। इसी प्रकार ई०पू० 306 के आसपास सीरिया के बादशाह सेल्युकस ने मोगलधनीय को अपना दूत बजाकर बगाने के दरबार में पठितपुत्र भेजा था। मोगलधनीय ने अपने 'भारत वर्णन' में लिखा है "वहाँ हम इस स्टैंडिआ (एक स्टैंडिआम 909 फीट 9 इंच का होता है स्टैंडिआम स्टैंडिआम का बहुवचन है) पर आगमन लगे हैं जिससे बगानेकारों का ठेका दूरी का पता चलता है। तब जब के दिन भारतीय फस (पंचांग) सुन जाता है भन्मन्त्र बगाने के लिए अन्य-समय लिखा जाता है और 'स्मृति' के अनुसार होता है। ये समाप्त इन्धन सूचित करते हैं कि भारतीय लेखन कला अत्यन्त प्राचीन काल में ही पूर्ण विकास की अवस्था में पहुँच चुकी थी।

अब इस 'वैदिक कल्प' द्वारा प्राचीन सभ्यता के लेखन' सम्बन्धी यूरोपीय विद्वानों की कल्पना पर संशय में विचार करें। यह स्पष्ट है कि वेद वैदिक पद्धति से एक पीढ़ी के कर दूधरी पीढ़ी के प्राप्त होते हैं। किन्तु उनके वैदिक पठन-पाठन का कारण यह नहीं था कि उनकी लिखित प्रतियाँ उपलब्ध नहीं थीं बल्कि उसके पीछे अर्थ ज्ञानियों की यह वैदिक कल्प थी कि गुरु-मुख से उन्हें सीखें। ग. उल्डराल या थॉम की शुरुआत तक श्रृंखलाओं की वैदिक शक्ति का रक्षण नहीं हो सकता, बल्कि वे वेद के धर्मों के शुरुआत प्रयोग की बड़ी आवश्यकता थी। इसलिए उनका शुरुआत उल्डराल गुरु के मुख से ही सीखा जाता था जिससे कि पाठ में उल्डराल की असुविधा न हो, जो सम्पन्न के यश के लिए वह की तरह समर्थ मानी जाती थी। वैदिक लेख इसी कारण, न केवल धर्मों को, अपितु उनके पद्धति, यो-यो पर लिखकर कल्पकत तब यहाँ के उत्पत्ति-फेर से घन, बड़ा आदि पठों को भी स्मरार्थ बगानेवाले करते थे। लिखित पुस्तक से पढ़ना निषिद्ध था। लिखित पुस्तक से पढ़नेवाला अथवा पठक माना जाता था। किन्तु वेद की लिखित प्रतियाँ विस्मृति में सदावर्त

है। इसके प्राप्ति होने के पूर्व भारत में (क्रि.पू) चौथी सताब्दी तक ही संस्कार कला के मूल्य उपलब्ध थे जिसके आधार पर भारतीय विद्वानों ने सारा साहित्य को धारण स्थापना दी थी। किन्तु इसके उपलब्ध होने के बाद से भारत निरति जन को प्राचीनता की दृष्टि से भी संस्कार के अन्त सभी एकाग्र में अवस्थित रूप से अग्रणी स्वीकार किया जाने लगा है।

सिन्धु लिपि

भारत की अब तक की इस प्राचीनता लिपियों के विषय में जो भी जानकारी मिली है, उसके आधार पर सिन्धु सभ्यता की लिपि प्रारंभिक प्राचीन माने गयी है।

इसे हम सिन्धु का हीना लिपि के रूप में अभिहित कर सकते हैं। पर विद्वानों के अनुसार सिन्धु लिपि बहुत विकसित अवस्था में है। इसलिए अनुमान किया गया है कि सिन्धु लिपि में भी प्राचीन कोई लिपि रही होगी, जिसका विकसित रूप सिन्धु लिपि है। सिन्धु लिपि की खोज होने के पूर्व तक भारत की प्राचीनता लिपि के रूप में कोई एक सारोप्य की मान्यता होगी जो क्योंकि इन लिपियों के लेखों का पता विद्वानों को सिन्धु लिपि के लेखों के प्राप्ति होने के पहले ही लग चुका था।

किन्तु अब सिन्धु लिपि के लेख उपलब्ध में आए जो कोई एक सारोप्य में भारत की प्राचीनता लिपि होने का गौरव प्राप्त था। अब लोग निश्चित रूप से सिन्धु लिपि को भारत में प्राप्त होनेवाली लिपियों में प्राचीनता मानते हैं।

सिन्धु लिपि को अभी तक बहुत कम संभव नहीं हो सका है। अभी तक इस दिशा में अधिक उपलब्ध हो मिली है। सिन्धु लिपि में कोई इतिहास नहीं जोका है कोई वैदिक काल। इन दोनों के अन्तर्गत कोई सीसी काल भी इसमें विहित हो सकती है। 'प्राचीन' एवं 'मध्यम' के समुदाय में इस लिपि की सम्पत्ति की कीर्ति की। उन्होंने



सिन्धु लिपि की खोज होने का पता विद्वानों को सिन्धु लिपि के लेखों के प्राप्ति होने के पहले ही लग चुका था।



सिन्धु लिपि के कुछ चित्र (अ) और (ब) में कुछ के विवरण दिए जाते हैं।

250 से 417 तक बिहू इस लिपि में निकले हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि उनकी लिपि वर्णमाला पर आधारित नहीं थी बल्कि विषोय थी। इसके लंछ, मुहुरें, चतुर्थों के टोंकरी मंत्र के छंदे-छंदे टुकड़ों आदि पर अंकित है। प्रसिद्ध इतिहासकार प्रो० राधाकृष्ण चौधरी ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत का सांस्कृतिक एवं सांस्कृतिक विकास' में लिखा है कि अति प्राचीन काल में सिंधु पाटी सभ्यता में लंछन कला का अविष्कार हो चुका था किन्तु लिपि चित्रकला की अवस्था में ही थी। इसका बिहू संपूर्ण रूप अवलोकन करने को प्रकट करता है।"

अंग्रेजों के शासन काल में सम्भव और संस्कृति के इतिहास का अध्ययन आधुनिक स्वरूप में हुआ। स्टुअर्ट पिण्ट ने अपनी किताब प्रीहिस्टोरिक इंडिया के पृष्ठ-14 पर उल्लेख किया है कि जॉन ब्रूटन और विलियम ब्रूटन भाईयों को 1856 में लाहौर से कराची तक रेल-लाइन बनाने का ठेका मिला। इन लोगों ने मुल्तान-समूह रेल लाइन के निर्माण में इङ्ग्लैंड की ईंटों का बेदरती से इस्तेमाल किया। इस अवधि के ईंटों की मजदूरी का अंशजो इस बात से लगता था सकता है कि करीब पांच हजार वर्ष पहले निर्मित ईंटों पर बनाए गए पट्टियों पर आज के दिन में भी रेलगाड़ियाँ सही मील की गति से गुजरती हैं। ईंटों की इस अंधधुंध भूट के दौरान सभ्यता के कई पुराधराण प्राप्त हुए। इनमें से जो सबसे अधिक आकर्षक पुण्यलेख थे, उन्हें निर्माण कर्म में लगे मजदूरों ने और इंजीनियरों ने अपने पास रख लिया।"

मोहेंजो-दड़ो के पुरातात्विक काल का ज्ञान अकस्मात ही हुआ। पुरातत्व के उच्च पदाधिकारी स्व० राखल दास बनर्जी यहाँ यहाँ से ठन बाछ स्तम्भों की खोज में घूम रहे थे जो भिन्न-तरंग ने भारत में प्रस्थान करते समय अपनी कौर्ति के लिए यहाँ स्थापित कराए थे। 1922 के शीतकाल में बोड़ पर शिकार खेलते समय उसका भूत जाने के कारण वे एक टीले पर जा पहुँचे। दैवयोग से उनको एक चकमक पत्थर (Flint) दिखाई पड़ा। उन्होंने अनुमान लगाया कि इस घु-गने में कुछ प्राचीनता अवश्य दबी पड़ी है। यहाँ पर कुबाज-कासीन खोद्व हूय भी था। उत्खनन करने पर एक प्राचीन नगर की एक नहीं सत्ता परतें निकलीं तथा जो सामग्री मिली वह पूर्णतया नए प्रकार की थी। सर जॉन मार्शल के निरीक्षण में यह उत्खनन कार्य सम्पन्न हुआ। तदनन्तर ई० 1920 ए० 1921 के विदेशन में 1932 तक यह कार्य चलता रहा। यह सिन्धु नदी के पश्चिम की ओर सिन्धु घाट के सहरकान जिले (वर्तमान पाकिस्तान) में स्थित है। इस नगर का नाम मोहेंजो-दड़ो अर्थात् 'मुर्दों की समाधि' अथवा 'मुर्दों का नगर' था। मोहेंजो-दड़ो में लगभग 400 मील दूरी तक खोजों के पूर्वी किनारे पर ब्रिटिशोपरी जिले (पाकिस्तान) में पुरातत्व विभाग के ठप - निदेशक स्व० दयालदा साहनी ने 1921 में उत्खनन कार्य आरंभ किया तदनन्तर माधव स्वरूप दास ने भी किया। इस प्राचीन नगर का आधुनिक नाम हड़प्पा था। इसका प्राचीन नाम हरीपुर (इरीत - स्वर्ण युग - सभ्यता अर्थात् स्वर्ण स्तम्भों का नगर) जिससे हड़प्पा तथा हड़प्पा हुआ।

जमरत कमिथम (1814-93) ने 1856 में इङ्ग्लैंड की यात्रा करके वापस से कुछ मुहुरें प्राप्त की थीं जिन पर सिंधु लिपि के संकेत देखीं थे। कमिथम इन पुस्तकों के महत्व की समझ से गए थे किन्तु ये इङ्ग्लैंड के अन्वेषण को आगे नहीं बढ़ा सका। उन्होंने 1875 में इन मुहुरों में से कुछ को प्रकाशित करके ही मंतीप कर लिया। सिन्धु सभ्यता के दो प्रमुख

सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि सिंधु लिपि का ऐसा कोई लेख अब तक नहीं मिला है जिसमें 26 से अधिक संकेत हों। मुहूर्तों पर लिपि संकेतों के साथ पशु-पक्षियों की जो आकृतियाँ डाली गई हैं, उनके अध्ययन से ज्ञात होता है कि सिंधु लिपि दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी जाती थी। यह भी पता चलता है कि जहाँ लिपि-संकेत दाईं पंक्तियों में हैं वहाँ पर मूल्यकीदान पद्धति से उनमें लिखा गया है, यानी पहली पंक्ति दाईं ओर से बाईं ओर को लिखी गई है, और दूसरी ५ तक बाईं ओर से दाईं ओर को। इसका अतिरिक्त सिंधु सभ्यता की लिपि में ऊपर से नीचे की ओर कुछ बगलें हुए भी चित्र मिले हैं। इन तीनों प्रकार की लिपियों का उद्गम सूर्य की किरण दाँव से बाँवें लिखी जाने वाली लिपि का उद्गम चन्द्र किरण तथा ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर लिखी जाने वाली लिपि का उद्गम अग्नि की लपटें हैं।¹ ज्ञात होता है कि सिंधु लिपि में लगभग 400 संकेतों का प्रयोग होता था, किन्तु एक ही संकेत के विविध रूपों को संग्रहित दिया जाए तो इन संकेतों की संख्या लगभग 250 रह जाती है। अब, यह एक स्पष्ट बात है कि इतने अधिक संकेतों वाली लिपि वर्णमालात्मक तो नहीं हो सकती। यह भी स्पष्ट है कि विश्वलिपि या पाश्चात्यत्मक लिपि के लिए इतने संकेत पर्याप्त नहीं हैं। सुमेरी लिपि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आरंभ में इसमें लगभग 2000 संकेतों का प्रयोग होता था और कालान्तर में उनकी संख्या केवल 900 रह गई। संकेतों की संख्या में कमी होते जाते लिपि के विकास को स्वतन्त्रता है (चीनी लिपि इस नियम का अपवाद है) सिंधु लिपि के बारे में और एक महत्वपूर्ण बात यह है कि सिंधु सभ्यता के लगभग एक हजार वर्षों के दीर्घ जीवन-काल में भी इसको संकेतों के स्वरूपों में कोई विशेष परिवर्तन देखने में नहीं आता। सिंधु सभ्यता के अन्य पुरावों के निरीक्षण से भी यह बात सिद्ध होती है कि 2600 ई.पू. के आसपास जिस सभ्यता के वर्धमान होते हैं, वह अपने विकास के उत्कर्ष पर पहुँच चुकी थी, और अगले स्वर्णयुग एक हजार वर्षों तक उसमें कोई विशेष परिवर्तन देखने को नहीं मिलता। सिंधु लिपि का स्थायी स्वरूप भी इसी तथ्य की ओर इशारा करता है कि सिंधु सभ्यता लगभग एक हजार वर्षों तक वैसी की वैसी बनी रही।²

सिंधु घाटी लिपि के दृष्टिकोणों का प्रकाश करनेवाले विद्वानों की लम्बी सूची है। इनमें श्री एच।एच। ब्रह्मेल (ग्रे) डब्ल्यू। यम। फिलिप्स (पेरी, डी) जी। अर। डटर रेवरण्ड बच्च। हराम श्री सुधांशु कुमार रे। डा। प्राण नाथ श्री राज मोहन नाथ स्वामी शंकरानन्द हर पी। मेरंगी एल्को परपोला सी।पी. परपोला. कार्कोन्मी एच।पी। आल्तो, डा। फतेह सिंह सी. एस।आर। राय श्री यमाजी।एन। कृष्णास्वामी, श्री पाल।एस।बाबुकाकर श्री डी।यम। कर्मा, श्री यम। पराशरनाथ, श्री एम। डब्ल्यू।फर और हेवेसी श्री ब्रांको बिहारी बकुवर्ती, रूसी विद्वान, बी। हरोज्नी श्री जॉन न्यूबरी आदि

कुछ पुरातत्वों ने इस लिपि की अतिरिक्त रचना का तथा इसके संकेतों का चित्रिक विश्लेषण करने का भी प्रयत्न किया है। गाह, सिडनी स्मिथ, लांगहून और डटर इनमें प्रमुख हैं। गाह ने सिंधु लिपि में प्राचीन भारतीय भाषा की कल्पना की है और इसके तीन संकेतों को पुत्र राज्य के अर्थ में बटने का प्रयत्न किया है। डटर ने सिंधु लिपि तथा ब्राह्मी लिपि में कुछ

इसके खोजने की कोशिश की। यह एक बड़ा चीनी ही सिंधु लिपि को अन्वेषण करने में है। इसके विपरीत सिद्धने सिंधु में किसी भी भाषा का अन्वेषण नहीं करे हुए इसके संकेतों का वैज्ञानिक विश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपना अन्वेषण इस लिपि के विचारक संकेतों पूर्व-सर्प तथा अन्य-सर्प संकेतों की रूप करने तक ही सीमित रखा।¹

वैदिकवाङ्मय का भारतीय पुस्तक-संग्रह में तकनीकी महत्व के रूप में है। इसका अन्वेषण प्रसिद्ध पशुपति मुद्रा से आरंभ होता है। इस मुद्रा के बीच में एक सर्प का चित्र की आकृति है। ऊपर लिपि संकेत है और दाएँ बाएँ में चौथे चतुःश्रुति संकेत हैं। नीचे बाईं ओर का संकेत टूटा हुआ है। ये सब स्वीकार करते हैं कि सिंधु लिपि दाईं ओर से बाईं ओर की लिखी गयी है। अब इस सम्बन्धित पशुपति मुद्रा में ये चतुःश्रुति आकृतियों का विचार करना चाहते हैं किन्तु भूँ बाईं ओर की है। ओर को विचार मुद्रा दाईं ओर है, ये कोई महत्व नहीं देते हैं। इस आकृति के बाईं ओर उल्टा भाग में एक और चतुःश्रुति रही है। अब वास्तव में इस मुद्रा को विचारित रूप में चढ़ते हैं। दाईं ओर के चतुःश्रुति - नीच (नीच) ऊपर (नीच)। ऊपर करने में चतुःश्रुति (नीच) की आकृति है। बाईं ओर नीच (ऊपर) और पुनः चतुःश्रुति की आकृति है। वास्तव में यह कहना है कि मुद्रा में ऊपर दाहिनी ओर लिपि संकेत इन चतुःश्रुति के संस्कृत भाषा के आधार हैं जैसे नीच(नीच) ऊपर (नीच) नीच (नीच) और नीच (नीच)। इन आधारों से चतुःश्रुति शब्द बनता है, जो वास्तव में अनुवाद इस का शाब्दिक है।²

एक अन्य मुद्रा में संकेत की इसी प्रकार की आकृति है और इसके ऊपर चतुःश्रुति-संकेत हैं। इस मुद्रा में चतुःश्रुति वास्तव में दाईं ओर के दो संकेतों को जोड़ देते हैं और बीच बीच संकेतों को इंगित करता है। यहाँ है। इस मुद्रा में कोई चतुःश्रुति नहीं है, इसलिए वास्तव में यह अतिशय सिद्धांत का समर्थन नहीं किया है। एक ही भाषा की आकृति एक मुद्रा में वास्तव में (इतना) और दूसरी मुद्रा में इतना (इतना) कैसे हो सकती है? यहाँ है कि इनकी अन्वेषण में गड़बड़ है।³

संस्कृत के अन्वेषण करने का वैदिक करनेवाले मुद्रासिद्ध पुस्तकसंग्रह का शिकारीपुर संग्रह का भी सिंधु लिपि के बारे में अपना अन्वेषण प्रकाशित किया है। यह का मत है कि अधिकतम इष्टतम संस्कृति (2500-1900 ई.पू.) की सिंधु लिपि में 340 चिह्न या चिहनों का संग्रह 40 मौखिक चिह्न हैं। किन्तु पाश्चात्य इष्टतम संस्कृति (900-1800 ई.पू.) की सिंधु लिपि में केवल 20 मौखिक चिह्न रह गए हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पाश्चात्य सिंधु लिपि वर्णमालात्मक बन चुकी थी। यह का कहना है कि यह परिचय एशिया की समेटिक लिपि को प्रभाव से हुआ। उन्होंने बताया कि किरीलीयन कीसे उत्तरी समेटिक लिपियों के संकेतों में और पाश्चात्य सिंधु लिपि के संकेतों में सम्यक् भी समझा है। इतना ही नहीं उन्होंने समेटिक वर्णमाला के वर्णमाला की अवस्था में ही पाश्चात्य सिंधु लिपि के 20 चिहनों की वर्णमाला को खोजने का भी प्रयत्न किया है। यह का कहना है कि पाश्चात्य सिंधु लिपि की वर्णमाला में 14 या 15 वर्णमाला है और 6 स्वरधरा। इस बातों हैं कि समेटिक लिपियों में स्वरधरा नहीं थे। लेकिन वास्तव में उत्तरी समेटिक लिपि के अन्वेषण का अपनी भाषा के लिए सब

यह लिपि बर्मा, तो उसने उन्होंने सड़ों के लिए लिख बना लिए थे । राज का अध्ययन यह सही है तो हमें कहना पड़ेगा कि परकी इक्ष्वा संस्कृति के लोगों ने भी ऐसा ही किया था।¹² और इस सिंधु बर्माप्रांत की भाषा क्या थी । अपने अध्ययन से राज इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सिंधु लोगों की भाषा भारत-यूरोपीय परिवार की तथा भारत-ईरानी वर्ग की थी। साथ ही वे यह जानकारी भी देते हैं कि ओ 360 राज्य उन्होंने खोजे हैं, उनमें 30 राज्य भारत-यूरोपीय भाषा के नहीं हैं । एक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सिंधु लिपि की भाषा बंदों की प्राचीन संस्कृत भाषा से काफी मिलती है । उन्होंने कुछ मुहरों पर राजा के लिए पात पातक व अपि शब्द भी खोजे हैं । एक ने सिंधु बर्माप्रांत का सेमेटिक लिपियों के साथ साम्य दरसने के लिए को तालिका दी है । उसमें उन्होंने बाह्य लिपि के कुछ अक्षर दिए हैं । अतः लगता है कि बाह्य बर्माप्रांत परकी सिंधु बर्माप्रांत से बनी थी । पर वे भी यह स्वीकार करते हैं कि सिंधु लिपि बाह्य और से बाह्य और को लिखी जाती थी ।¹³ सिन्धु घाटी लिपि का एम्बोस्पाटन ठीक समय तक प्रकृति भिन्न नहीं हो सकता था तक कोई दृष्टिकोण अध्ययन वैज्ञानिक अभिलेख प्राप्त नहीं हो पाता ।

स्वामी हांकटनर का अध्ययन

एम्बोस्पाटन मिशन, वेस्टिंग हाट, ब्रिटेन के भुवने, स्वामी हांकटनर का अध्ययन काफी भव्यपूर्ण रहा। स्वामीजी की चरणा है कि यहाँ की संस्कृति वैदिक थी तथा उन भाषों से मिलने थी ओ आकारणकारी थे । पर्यटनशील जाति इनमें ब्रह्म (वेद) की रचना कर ही नहीं सकता । अन्य-यह भी मानते हैं कि वेद पुस्तकों के जन्म थे, जिसमें समाज के एक भाग का वर्णन है । इसके अतिरिक्त बंदों में दुर्लभ व कठिनार्थों का वर्णन है जिससे निर्दिष्ट होता है कि सिन्धु-घाटी के निवासी विवेक नहीं अस्तित्व परचित व्यक्ति थे ।

पात व लिपि पर स्वामी जी ने बहुत गंभीर शोध किया है । प्राचीन परिचय इतिहास के अर्थक देवों की लिपियों का अध्ययन किया तथा तुलनात्मक शोध करने के परवात् यह निष्कर्ष निकाला कि सिन्धु-घाटी लिपि ही परिचय एशिया के देवों की लिपियों की जन्मदाता है, क्योंकि इनमें यहाँ की लिपि के बहुत से चिन्ह पाए जाते हैं । अन्य के कथनानुसार इस लिपि में लगभग 400 चिन्ह हैं, 118 अक्षरों के वर्ण हैं तथा 469 राज्य हैं ।

स्वामी जी ने कुछ मुहरों का एम्बोस्पाटन से संश्लेषण (तंत्रिक सम्मेलन) द्वारा किया तथा कुछ वर्षों परवात् एक बर्माप्रांत प्रस्तुत की । ठा (वेल्सोपेटमिन्) से प्राप्त एक मुद्रा बने, जो विदित संसार में प्रसिद्ध है एक विस्तृत कर्मांक 122944 है, स्वामी जी ने 'कच' पड़ा है।

सिन्धु लिपि और बीबी

सिन्धुकी लिपि की प्राचीनता और व्यवस्था के संबंध में कोशी अक्षरों के एक जाने-पाने विद्वान जी हरिसागर जीवनीय ने अपनी पुस्तक 'वैदिक लिपि की ऐतिहासिक पुनर्स्थापना' में विस्तृत रूप से चर्चा की है । उन्होंने कहा है कि घाटी-घाटी संस्कृतों में यहाँ की व्यवस्था के साथ-साथ लिपियों का जन्म होता निश्चय देता है । वास्तव में ही यह लिपियों

एवं पात्र लिपियों का अधिकतम देखने को मिलता है। यद्यपि अभी तक की इस प्राचीनतम लिपियों के विषय में को भी जानकारी नहीं मिली है, इसके अन्तर्गत वर सिन्धु सभ्यता की लिपि सर्वाधिक प्राचीन नहीं गयी है। पर विद्वानों के अनुसार सिन्धु लिपि बहुत विकसित व्यवस्था में है, इसलिए अनुमान किया गया है कि सिन्धु लिपि से भी प्राचीन कोई लिपि रही होगी जिसका विकसित रूप सिन्धु लिपि है। यह लिपि संभवतः काश्मिर के आदि पुराने पत्थरों पर विद्यमान। इस अवधिपूर्व की लिपि है।

हाकरनर स्वामी द्वारा रचित अधिकांश किताब "दि इन्डियन बीकन क्वीकर्स" के पृष्ठ-65 पर उल्लेख है कि प्राचीन सिन्धु सभ्यता की एक सभ्य पद्धति का मुद्र के लक्षणों को अधिक अध्ययन पर 'कम' कहा है। इनके अनुसार "कम" अवधिपर भारत की एक बृद्धि-बोली और मसीवीची बोली थी। सिन्धु घाटी की लिपि को अपने अध्ययन के काम में काश्मिर के स्वर्णव निर्मल कुमार वर्मा ने संस्कृत के गुरु की सहायता से जो वर्णमाला तैयार की है, उनमें संघर्षी पात्र में 'क' और 'म' की अवधि नहीं है जिसे संस्कृतनर स्वामी ने 'कम' कहा है। यद्यपि श्री राजेश्वर झा के अनुसार की लिपि इसी 'कम' लिपि से संबंधित है जो संस्कृत और भारत की अवधि लिपि के रूप में अवधि लिपि है (लिपि पाठ, मार्च-जून, 1969, पृष्ठ-45)

ब्राह्मी लिपि की अवधि

हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में यह बात स्पष्ट रूप से नहीं मिली है कि किस लिपि की बोली की उत्पत्ति कुछ अधिक प्राचीन या अनेक हो उसके निर्धारण के रूप में नहीं अवधि को 'ब्राह्मी' का नाम ले लिया जाता है। संस्कृत की अन्य पुराणिकों की अवधि के बारे में भी नहीं देखने को मिलता है कि प्रायः उनके अन्तर्गत कोई न कोई ऐसी पुस्तक ही जाने गयी है। इनके द्वारा भी 'ब्राह्मी' की लिपि का व्यवहार कहा गया है, और इसीलिए हमारे देश की इस प्राचीन लिपि का नाम ब्राह्मी पड़ा है। अनेक ने अपने लेखों की लिपि को 'ब्राह्मी' का नाम दिया है, उसके लेखों में कहीं भी इस लिपि के लिए ब्राह्मी नाम नहीं मिलता। लेकिन यद्यपि जैसे तथा ब्राह्मण धर्म के ग्रंथों के अनेक उत्पत्तियों से यह होता है कि इस लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि ही रही होगी।

भारत के आधुनिक सम्बन्ध पश्चिम एशिया के निवासियों से सहजता से पूर्व से थे। यह भी माना है कि संस्कृत की कोई भी लिपि ऐसी नहीं है जिसमें दूसरी लिपि का अधिकतम न हो। यह अवधि कहा जा सकता है कि ब्राह्मी लिपि का विकास सिन्धु घाटी लिपि तक उनकी सौम्य (किनीशियन) लिपि या आरम्भिक लिपि के सम्बन्ध से हुआ। अब ब्राह्मी के 'अ' को लिखा जाए, जिसकी अवधि गयी है। किनीशियन, आरम्भिक तथा मध्यम अवधि लिपि एक ही बात (सौम्य), की हैं जो धर्म से धर्म मिलती जाती हैं। उनमें से से किनीशियन लिपि के 'अ' ने भारत में अन्तर्गत अपनी दिशा बदल ली। यहाँ के एक अन्तर्गत 'एलेफ' ने भारत में आकर दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम 'ब' तथा 'व' हो गये। इसकी दिशा अब वे पूर्वोक्त की गई। 'क' अवधि 'ब' की अवधि होने के कारण मिला ही रहा। अन्तर्गत के 'ह' 'व' 'स'

को अष्टा खण्ड कर दिए गए। इस प्रकार परिचय परिचय के अठार अक्षर ब्राह्मी में सम्मिलित हुए। सिन्धु-घाटी-लिपि के 4.7 चिह्नों में से कुछ चिह्न ब्राह्मी के अक्षरों के समान प्रतीत होते हैं परन्तु उनकी ध्वनियों के विषय में निश्चयपूर्ण रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनका तदनुवादकृतन पूर्णरूप से सर्वसम्मत नहीं हो सका।

ब्राह्मी लिपि के तदनुवादकृतन का एक अपना छेदा सा इतिहास है। सिन्धु तथा मेसोपोटामिया में शीम्योलिपि तथा सिलिन्सन के परिश्रम से बर्बाद की प्राचीन लिपियों का तदनुवादकृतन ऐंग्लिश शैलिसिन्धु के शिलालेखों के प्राप्त होने से पूर्ण हो चुका था, परन्तु भारत में ऐसा कार्य शिलालेख प्राप्त न हो सका जिस पर प्रात लिपि तथा प्राचीन लिपि में एक ही लेख अंकित हो। गूढ़ लिपियों के पढ़ने में इन देशों में तो विद्वान प्राचीन काल से अर्थात्तः की ओर चले परन्तु भारत में अर्थात्तः से प्राचीन काल की ओर चले। जैसे अन्य देशों के पराक्रम विद्वानों के परिश्रम से अतीत की जानकारी हुई उसी प्रकार भारत में भी प्राचीन काल की लिपियों की पढ़ने का क्षेत्र नहीं के विद्वानों को मिलता।

जैनों के पञ्चमहासूत्र तथा समाचारसूत्र में 18 लिपियों के नाम दिए गए हैं, जिनमें से पहला नाम बंधी (ब्राह्मी) का है। धारावाहीसूत्र में सर्वप्रथम बंधी (ब्राह्मी) लिपि को प्रथमकार करके (नन्दी बंधीए लिपि) सूत्र का आरंभ किया गया है।¹²

ब्राह्मी में निश्चित शैलियों में सबसे प्राचीन ग्रंथ आचार्यशिव प्रकाशत अंग सूत्र है। पञ्चमहासूत्र की बंधी को उनके सुपात्र लिपि 'अथ सुपात्र' ने इन 18 ग्रंथों में मुख्य रूप से संकलित किया है। एकाधरा अंग सूत्रों में प्रथम लिखित पंजीत (आख्या प्रकाशित) जो पञ्चमहासूत्र सूत्र के नाम से विचार प्रसार है सबसे बड़ा ग्रंथ है। इसके आरंभ से ही 'पन्ने बंधीए लिपि' नामों द्वारा ब्राह्मी लिपि को स्पष्टकर किया गया है। इसके पूर्ववर्ती सुपात्र संग सूत्र समाचारसूत्र के 18वें समाचार में 18 प्रकार की लिपियों का वर्णन इस प्रकार है - बंधीए ए लिपि, अष्टाक्षर लिपि, लोख लिखाने, ए. त. बंधी प्रकाशलिपि (अवधारणिक) ऐंग्लिश लिपि, खारसिन्धु, उच्छाति, अक्षर पुष्टि, योग्यता, धारालिपि, पिण्डहवा अक्षरलिपि, गणिअलिपि, गण्यलिपि, भूयलिपि, आदर्शलिपि, भालेसीलिपि, खारसिन्धु, बंधीए लिपि (या खारसिन्धु) ब्राह्मी और खारसिन्धु।¹³

जैन ग्रंथों के अध्यायों से स्पष्ट होता है कि ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान् श्रुतपद से हुई। उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी को दक्षिण हाथ से लिखने की जो विधि निराला, यह प्रथम सीखनेवाली स्नातिका के नाम से ब्राह्मी कहलखी। ब्राह्मी लिपि के मूलकाधर 46 थे। संप्रथ है। पचास उस समय तक केवल मानवजाल को प्रकाश ही रही हो खीर उसमें वि. इ. तु और ल अक्षरों का उपयोग न होता हो।¹⁴

अभिध बंधीए ग्रंथ 'ललिता विस्तर' के लिपिलाला संज्ञान परिचय खंड में जिन चौसठ लिपियों की बर्णना की गई है वे हैं (1) ब्राह्मी (2) खारसिन्धु (3) पुष्करमयी (4) अक्षरलिपि (5) बंधीए लिपि (6) गण्यलिपि (7) धारालिपि (8) अंगुलीलिपि (9) अक्षरलिपि (10)

[illegible]

असौम्य भी बहानी लिखी

बौद्ध ग्रंथों के उपलब्धों से पता चलता है कि आरंभ में अशोक अपनी कूरता के कारण 'बधशासक' कहलाता था; परन्तु बाद में उसने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया और वह धार्मिक कार्य करने लगा तो उसे 'धर्मशासक' कहा जाने लगा। अशोक के कौशल दो धर्मलेखों यानी गुजरा (बम्बे प्रदेश में बतिया के पास) तथा मस्कौ (जिला रामपुर, कर्नाटक) के शतु-शिलालेखों में ही इसका 'अशोक' नाम देखने में आता है। शेष सभी धर्मलेखों में उसे 'देवदाम्पिये पिण्डस्सि एवधिम' (देवाताओं के प्रिय और सभी पर क्षुधा करनेवाले राजा) कहा गया है। स्पष्ट है कि यह नाम उसने बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद ही धारण किया होगा। अशोक का संवत्सरतीय शीलंका वर तिमस (शिम्बर) राजा भी अपने नाम के साथ 'देवदाम्पिये' जोड़ता था। तिमस राजा के समय में ही अशोक का पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संवत्थिशा बौद्ध धर्म को अपनाने के लिए शीलंका पहुँचे थे।

राजधानी भुवनेश्वर के पास खांडगिरी उदयगिरी पर्वत पर दो मंजिल की एक चौड़ी गुफा में खुदा हुआ है। इस गुफा एवं लेख का निर्माण छात्रमाल की अग्रपिढ़ियों ने करीबन दो लाखों के लिए किया था। लेख लगभग 15 गुना 5 मी फुट जगह भरे हुए है और अब बड़ी कठिनाई से ही पढ़ा जा सकता है। इसकी प्रथा प्राकृत है जो बौद्ध ग्रंथों की प्रथा से मिलती-जुलती है। पहली बार 1885 में डॉ० मगवान लाल इन्द्रजी ने इस लेख का पठ तथा किया था। 1927 में डॉ० कर्मा ब्रह्मदासराय ने पुनः इसका एक शुरुआत प्रकाशित किया। इस लेख के अन्त के बारे में विद्वानों में काफी मतभेद है। श्रुतला और माधवजी ने इसमें दोष प्रकाशित इसका अन्त 157 और 147 ई०पू० के बीच निश्चित किया था। अन्तर्गत कई गुणोपनिषद् इसे ई० पू० पहली शताब्दी का मानते हैं। यह वैतथ्य का सबसे ज़रूरी शिष्टांत है, परन्तु अन्तर्गत है कि किसी भी प्राचीन वैतथ्य में एक सत्यता या सत्यता नहीं मिलता।

बुद्धमाल के मंदिर के चारों ओर आज भी कुछ प्राचीन बंदिका स्तंभ मौजूद हैं। वे स्तंभ इस पूर्व दूसरी सदी में तैयार हुए थे। इन्हें तैयार करते समय शिल्पकारों ने हर पर छाहरी लिपि का एक-एक अक्षर खोद दिया था। तबिक कर में इन्हें खोदने में सुविधा हो। इसीलिए बुद्ध माल के इन स्तंभों पर इन्हें छाहरी वर्णमाला के कुछ अक्षर मिल जाते हैं।

सन् 1956 ई० में अन्तर्गत जिले (हरियाणा) के सुब (प्राचीन मुकुट) स्थान से मिट्टी की एक गुफा एक अद्भुत खिलौना मिला है। इस खिलौने में एक कलक को बैठ हुआ और गौर में लिखने की एक तकली लिए हुए दर्शाया गया है। खिलौने का यह भाग जिसमें कलक का मिट्टा था, टूट गया है। उसी ठीक जगह प्रकाश पड़े है। वैसी अन्तर्गत के बर्तों के अन्तर्गत जाते हैं। यह खिलौना गुप्तकाल (ईस पूर्व दूसरी सदी) का है। खिलौने की उस तकली पर चार पंक्तियों में छाहरी लिपि के अक्षर अंकित हैं। वे अक्षर हैं अ, अ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, म, न। ये अक्षरही (हरियाणवी) के स्वरुप हैं। चारों पंक्तियों में इनकी 12 अक्षरों को खोदवाया गया है। कलक ने अपने बाएं हाथ से तकली पकड़ी है और दाएं हाथ की एक उंगली एक अक्षर के नीचे रखी है। तकली पर अंकित सभी पंक्तियों के कुछ अक्षर मिट गए हैं, पर चारों पंक्तियों के निरंतरण से पूरे 2 स्वरुप स्पष्ट हो जाते हैं।

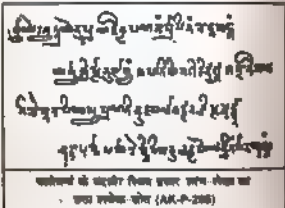
इन 12 अक्षरों से यह भी स्पष्ट होता है कि इस पूर्व दूसरी सदी में अभी छाहरी की वर्णमाला में अ, आ, इ, ई और औ, ए, स्वरुपों का सम्मिश्रण नहीं हुआ था। छाहरी वर्णमाला के बारे में यह जानकारी कई स्तरों की है। सुब से आज यह खिलौना अब नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय में है।

तिब्बत के 325 ई०पू० में परिचयोत्तर धरत से ही कथम चले जाने के पुरातन चंद्र चंद्रगुप्त (324-300 ई०पू०) ने नैपथल का गङ्गा उत्तरका पौरवंश की स्थापना की। चंद्रगुप्त के बाद उसका पुत्र बिंदुसार राजगद्दी पर बैठा और बिंदुसार की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अशोक 372 ई० पू० में राजा बना। इस संकेत है कि राजगद्दी के लिए मुक्त में काफी जगह हुआ

रिखाई देने लग जाते हैं। कुचनों चरित्रकी लक्षणों और सातवाहनों के लेखों में भी वे छोटे सिर दिखाई देते हैं। फिर इन सिरों पर एक छोटी सी अट्ठी लकीर भी लगने लगी। यह भी सिर पर लगनेवाली यह अट्ठी लकीर कुछ मोटी हो गई जैसा कि इस काल के मयूर के लेखों में देखने को मिलता है। फिर भी यह रिगिचिह्न वर्गीकार हो गया - पहले को, लन्दनर खोखल। तब वर्गीकार सिरवाले अक्षर भल्लम चरित्र के लेखों और अधिक मयूर लेखों में मिलते हैं, जबकि खोखले वर्गीकार सिरवाले अक्षर बाकाटक लेखों में मिलते हैं। दूसरी ओर यह रिगिचिह्न तब तथा खोखले त्रिकोण का रूप धारण करता है। तब त्रिकोणवाक्य सिर वाले अक्षर विजयवाक्य तथा वागवृत्तकोटि के लेखों में मिलते हैं।

दूसरी विशेषता है, अक्षरों के सत्य लगनेवाली स्वर-मात्राओं की गई सीमा। 'अ' की मात्रा की ओर को 'एक' लकीर लगी रह जाती जब यह लकीर ऊपर की ओर कुछ टेढ़ी होती है। 'इ' और 'ई' की मात्राएं कुछ गोलका हो जाती हैं और कई कलात्मक रूप में लग जाती हैं। अक्षरों के बीच लगनेवाली 'उ' की मात्रा जब अट्ठी रेखा में लगने कुछ बीच की ओर झुक जाती है।

'ऊ' की दूसरी मात्रा पहले मात्रा से बड़ी ओर की झुकाई हुई होती जाती है। 'य' की मात्रा 'उ' की दूसरी मात्रा जैसी ही होती है। 'ए' 'ऐ', 'अं' और 'औ' की मात्राएं कुछ ऊपर की ओर उठती हैं। कुचन कालीन मयूर के लेखों में और कुछ अन्य लेखों में अनुभवा के लिए पहले की तरह केवल एक सिंगु न होकर, एक छोटी सी अट्ठी लकीर दिखाई देती है।



छोटी विशेषता यह है कि तब और कुछ धसीट में लिखने को कारण इस काल के अक्षरों अक्षर कुछ नए रूप धारण करते हैं।

तीसरी विशेषता है, अक्षरों की कलात्मक बनने की कोशिशों के कारण उनकी सत्य मात्राओं में कुछ परिवर्तन। अक्षरों की कलात्मक बनने की प्रक्रिया के कारण अक्षरों में कोशिश आई है लकी रेखाएं ऊपर या नीचे झुक गई हैं और कुछ अक्षरों के बीच में कोशिश भी आई है। अक्षरवाक्य तथा वागवृत्तकोटि के लेख अक्षरों में विशेष रूप से मिलते हैं।

इस काल की अक्षरों विशेष में इनमें कुछ नए अक्षर भी मिलते हैं। अक्षरवाक्य के लेख में अक्षर 'य' तथा के लिए यह अक्षर या अक्षर की मात्रा का अक्षर मिलता है। अक्षर तब में अक्षर रूप अक्षर 'य' (य) के लिए भी व्यवस्था देखने को मिलती है। इस 'य' के लिए 'य' अक्षर का ही उपयोग होता था यद्यपि यह 'य' की दाईं ओर कुछ बीच रखता था और

बहुत मोटा होता था। 'ग' और 'घ' के साथ जुड़ा हुआ 'ङ' अक्षर भी अब मिलता है, जो के अकार का है। अब हमें 'उपध्वनीय' एवं 'विष्कम्भीय' ध्वनियों के लिए भी अक्षर मिलते हैं। औज़ारी ने इनके बारे में लिखा है, 'क' और 'ख' के पूर्व बिना क उपचारण मिलान होता था और विष्कम्भीय कहलाता था। इसी तरह 'प' और 'फ' के पहले बिना क उपचारण भी भिन्न था और उपध्वनीय कहलाता था। विष्कम्भीय के लिये बिना क, जो कभी-कभी प्राचीन पुस्तकों, लिपिलेखों और छापकों में मिल आते हैं जो अक्षरों के ऊपर बहुत कमसे कम होते हैं, और इनमें भी अक्षरों की कई समय के साथ परिवर्तन होना पाया जाता है" (भारतीय प्राचीन लिपि पृष्ठ- 41) पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि दक्षिण के गुफालेखों में 'ह' के लिए बड़े बड़े को लेखों और दो बिंदु लगा दिए मिलता है। प्रस्तुत काल के लेखों में इसी प्रकार का बिंदु 'ई' के लिए इस्तेमाल किया हुआ दिखाई देता है। इसाबनाद के समुद्रगुप्त के समकालीन में भी अक्षर मिलता है (वैदिकालक तत्व में) इसके लिए सभी तथा समुद्र को लेखों में भी यह अक्षर बना बना है।"

इस समय के दो-चार प्रमुख लेखों का उपचारण समुद्र करण दर्जित होता है। इस काल में उत्तर भारत से कुषाणवंशी राजाओं के बहुत से लेख मिलते हैं। ३00AD दूसरी शताब्दी में हुए हुए भगवत् जाने के पहले कुषाणों के पूर्वव लिख-राम (चर्च) के बारे एक भुक्त कबीले के रूप में होते थे। हुए हुए अक्षरों जाने के बाद में पूर्वी चीनी तुर्किस्तान में बस गए। बाद में इन्होंने कुषाणियों को काफ़ी राज्य पर भी अधिकार कर लिया। इनके नेतृत्व में अब कई भुक्त कबीले में भी अक्षर मिल गए थे। इतिहास में इनके पहले राजा का उल्लेख कर्पुण-समय (15-45 ई०) के नाम से मिलता है। इस राजा ने अपने को शाहपुराई कहा है। राजाओं राज्य पार्ष्णी (चर्च) का कारण करके इन्होंने अपना प्रभाव करवीर तथा काबुल की उपरान्त में भी कायम किया था। उसके बेटे बिम्ब-कर्पुण (45-78 ई०) ने अपने साम्राज्य में बंगाल, सिंध तथा समुद्र के प्रदेश भी जोड़ लिए। राज्य भी उसकी बदलाई में भी। लेकिन कुषाण साम्राज्य का चरम विकास कनिष्क (78-101 ई०) के समय में ही हुआ। कनिष्क ने पाटलिपुत्र (पटना) पर भी चढ़ाई की थी और वहाँ से वह प्रसिद्ध बौद्ध धर्म अशोक की अपने साथ ले गया था। कनिष्क तथा मध्यदेश में उसके राज्य राज्य करते थे। पुष्पगुप्त (पेशवा) नगर बसाकर वह बदलाई से अपनी राज्य भी वहाँ ले आया। पश्चिम में उसके साम्राज्य की सीमा अरब सागर तक थी और उत्तर चीनी तुर्किस्तान में खेतन तक। कनिष्क बौद्धधर्म का अनुयायी था और उसने बौद्धों की चीनी संगीति करवीर में कराई की + बहुत से बिंदु मानते हैं कि उसने 78 ई० में 'सक संघ' चलाया। उसके लिखों पर उसका नाम 'शाहपुराई कनिष्क' मिलता है। वह अपने को 'देवपुत्र' भी कहा था। कनिष्क के बाद उसके बेटों के बारे में हमें बहुत कम ऐतिहासिक जानकारी मिलती है। उसके उत्तराधिकारियों में वसिष्क (102-106), दुषिष्क (106-138 ई.) तथा वासुदेव प्रथम (समय 152-176 ई.) राजाओं के नाम मिलते हैं।"

कुषाणों की साहसी लिपि का विकास पूर्व काल के एक क्षत्रवं (शहदास, रंजुल आदि)

की लिपि से ही हुआ है। कुपाण लेखों में कुछ अक्षर ऊपर नीचे से दब गए हैं या छेदे हो गए हैं, जैसा कि 'ह' 'य' 'ण' 'म' 'व' आदि अक्षरों को देखने में स्पष्ट हो जाएगा। इसमें कुछ अक्षरों के अंश त्रिकोणाकार हो गए हैं जैसे कि 'व' 'श्व' तथा 'म' में। ब तक्षर वर्णाकार बन गया है और 'घ' वृत्ताकार। 'ए' और 'आ' की ऊपर लगनेवाली घत्राण कमजोर हो गई तथा दोनों ओर कुछ ऊपर की ओर उठ गई हैं। 'च' का घंटा बाईं ओर कुछ अधिक विकसित है।

खरोष्ठी लिपि

इस लिपि का जन्म और विकास अरमाचक द्वारा लगभग ई०पू० की छठी शताब्दी में उन जगहों के लिख, जो भारत (अधुनिक अफगानिस्तान व पाकिस्तान के कुछ भाग) के पश्चिमोत्तर प्रांतों में निवास करती थीं। इनमें बैक्ट्रिया, सोघिया, पर्सिया, भारत आदि देशों के निवासी सम्मिलित थे। इन जातियों के व्यापारियों का ईरान की राजकीय व्यवस्था के लाकार लिपि का प्रयोग करने में बड़ी कठिनाई प्रतीत होती थी।

इसकी व्यापारी की कोलाकार लिपि का प्रयोग व कर आवाचक का प्रयोग करते थे। अ य। व। री पर्यटनशील होते थे। इस कारण अरमाचक की पर्यटनशील हो गई और विभिन्न देशों में जाकर वहाँ की भाषा व व्यवस्था लिपि पर अपना प्रभाव डाल कर चिन्म-चिन्म लिपियाँ की जन्मदात्री बन गई।

खरोष्ठी लिपि के वर्ण

अ	इ	उ	ए	ऐ	ऑ	अ	क	ख	ग
𑀀	𑀁	𑀂	𑀃	𑀄	𑀅	𑀆	𑀇	𑀈	𑀉
च	छ	ज	झ	ञ	ट	ठ	ड	ढ	ण
𑀊	𑀋	𑀌	𑀍	𑀎	𑀏	𑀐	𑀑	𑀒	𑀓
त	थ	द	ध	न	प	फ	ब	भ	म
𑀔	𑀕	𑀖	𑀗	𑀘	𑀙	𑀚	𑀛	𑀜	𑀝
य	र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ	ॠ
𑀞	𑀟	𑀠	𑀡	𑀢	𑀣	𑀤	𑀥	𑀦	𑀧
ॡ	ॢ	ॣ	।	॥	०	१	२	३	४
𑀨	𑀩	𑀪	𑀫	𑀬	𑀭	𑀮	𑀯	𑀰	𑀱
𑀲	𑀳	𑀴	𑀵	𑀶	𑀷	𑀸	𑀹	𑀺	𑀻

* अ ओ ऋ ॠ

𑀼 𑀽 𑀾 𑀿

खरोष्ठी लिपि के वर्णन-ग्रोन लेखन कला का इतिहास (P-285)

दूसरी शताब्दी में इसका स्थान ईरान की पहलवी लिपि लेने लगी।

खरोष्ठी का अर्थ गंध की ओट वाला होता है। एक मत के अनुसार गंध को खल पर लिखे

जाने से इसे इंगीरी में खारोण्ट कहते थे और हमी का अपभ्रंश रूप खारोण्ट है। एक अन्य मत यह है कि आरम्य भाषा में खारोण्ट शब्द था जो उसी के धार्मिक साम्य के अन्तर्गत संस्कृत के खारोण्ट शब्द बना। इस भाषा के शब्द खारोण्ट जिसका अर्थ है लिखावट से खारोण्टी बना। काशीनगर (काशी के उत्तर में) का संस्कृत में खारोण्ट कहते हैं अतः लिपि को यहाँ अधिक प्रचलित था। खारोण्टी कहलाई। बौद्ध ग्रंथ मज्झिम निक्खय, जिसका अनुवाद चौधरी शतब्दी के आरम्भ में चौधरी भाषा में हुआ। के अनुसार किअ तु-सेटी (दिन्य शक्ति रखनेवाले आचार्य) के नाम पर खारोण्टी पड़ा।

इस लिपि के महम्मदकाल की अपनी स्वयं एक कहानी है जिसमें कई चरित्र हैं। कर्नल जेम्स टॉड ने वैदिककाल की एक कथि कहि व कुषाण कालीय राजाओं के कई प्राचीन सिक्कों तथा अभिलेखों का संग्रह किया था। 1830 में जर्मन वन्द्य ने अभिलेखाल के रूप को खुरखला। उसमें कई सिक्कों तथा दो खारोण्टी लिपि के अभिलेख प्राप्त हुए। 1834 में कैंप्टेन कोर्ट को एक रूप में कई सिक्कों तथा एक अभिलेख प्राप्त हुआ। 1838 में मैसन ने अपनी जाय संस्कृत में टागकर स्वयं शतकावली की 80 फुट लंबी चट्टान पर अंकित अक्षरों की 14 श्लोकों की प्रतिनिधियों तैयार करके प्रिंसेप के पास भेजीं। साथ ही साथ उसने कई सिक्कों पर अंकित राजाओं के नाम एक ओर को छोड़ लिपि में पढ़े जिनका नाम दूसरी ओर खारोण्टी में अंकित था। उन जर्मों को भी प्रिंसेप के पास प्रेषित करने भेजा, जो प्रिंसेप ने ठीक बख्ताबे। अब इसको प्रगति हो गई कि विद्वान यह जान गए कि जो लिपि अंकित है, वह चारों से बाई पढ़ी खारोण्टी तथा उसको फारस प्राकृत व पाली है। इन प्रयत्नों से 17 अक्षर पहचान लिए गए। मैसन ने अन्य 6 अक्षर पहचाने। शोध प्रिंसेप ने चट्टान का अपने सहायकों विद्वानों द्वारा 1840 में इस लिपि के 37 अक्षरों की एक बलपत्र तैयार की।

अभिलेख के कुछ शब्द इस प्रकार हैं "देवम प्रियो इतिव सर व कड नि व ड ठ नि" अर्थात् "देवताओं के प्रिय, दर्शन करने में निव, सर्व कार्यात्मक सम्पत्तों प्रयत्नों और मुहूर्तों" ..

लेकिन ये सब पत्र अक्षरों ही हैं। इनमें से किसी को भी उस प्रयत्नों से सिद्ध नहीं किया जा सकता। खारोण्टी लिपि सभ्यतिक लिपियों की तरह चारों ओर से बाई ओर को लिखी जाती थी। इसके कुछ अक्षर दो नहीं। बल्कि इनक पानिमान भी आरम्य लिपि से मिलते हैं। इसलिख् जनेक विद्वान ऐसा धनत हैं कि खारोण्टी का निम्नलिखित आरम्य लिपि के आधार पर हुआ है। ईरान के हखामनी शासन काल में संपूर्ण विश्वाम एशिया में आरम्य भाषा तथा लिपि का प्रचार था। तबालिख में भी आरम्य लिपि में लिखा हुआ एक शिलालेख मिलता है। हखामनी राजाओं का गंधारदा पर भी शासन था। आरम्य लिपि सभ्यतिक पत्रों को लिखने के लिए से ठीक थी। पञ्च भाषावीय परिचर की प्राकृत भाषा का इस लिपि में प्रयत्न प्रभव नहीं था। इसलिख्, ऐसा जान पड़ता है कि ईरान पश्चिमी शतब्दी में गंधार देश में आरम्य लिपि का अनुकरण करते हुए इस कई लिपि को जन्म दिए गए। आरम्य लिपि में केवल 22 अक्षर थे और उसमें स्वरों को अपूर्णता (जैसे कि सभी सभ्यतिक लिपियों में स्वरों का निम्नलिखित है) को और उसमें अन्य दीर्घ का कोई फेर नहीं था। इसलिख् प्राकृत (पालि) के लिए कई लिपि का निम्नलिखित करते

समय कुछ नए स्वर तथा उनकी मात्राओं के लिए संकेत गढ़ने पड़े। खरोष्ठी लिपि की वर्णमाला को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि उसके निर्माण में खह्यूनी लिपि का प्रभाव काफी रहा है। इतना होने पर भी खह्यूनी की तरह खरोष्ठी के स्वरों तथा उनकी मात्राओं में इतना दीर्घ का भेद नहीं है। इसमें संयुक्ताक्षर भी बहुत कम मिलते हैं। कुछ संयुक्ताक्षरों का पढ़ना तो अब भी स्मृति से मुक्त नहीं है। वस्तुतः जिस प्रकार इम्वारे देश में आज भी एक कामकाजाक महाजरी लिपि चलती है, उसी की तरह खरोष्ठी का भी जन्म मधुपुरी पर-मन्वहार, यही-जातों के हिस्से खादि के लिए ही हुआ था।

भारत में इस्लामी साम्राज्य के साथ जिस प्रकार अरबी-फारसी लिपि के आधार पर दाईं ओर से बाईं ओर की लिखी जानेवाली एक लिपि उर्दू के लिए रची गई, उसी प्रकार भारत की परिधिपोशा प्रदेश पर ईरानियों का अधिकार हो जाने पर वहाँ के ईरानी पंथवादी शासकों ने आर्यभट्ट लिपि के आधार पर दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जानेवाली एक नई लिपि खरोष्ठी का निर्माण किया गया था। सम्राट अलोक (272-232) ई०पू० के मानसिंह (इलाहाबाद, सरहद्दी सूबा पाकिस्तान) तथा शहबाजगढ़ी (पेशावर जिला पंजाब, पाकिस्तान) के शिलालेख इस खरोष्ठी में हैं। इन दो को छोड़कर अलोक के अन्य स्वरों लेख खह्यूनी लिपि में हैं।

खरोष्ठी के कुछ अन्य इतिहासिक चर्च

अ	इ	उ	ए	ओ	ऋ
इ	ई	ऊ	ऐ	औ	ऋ
अ	इ	उ	ए	ओ	ऋ
इ	ई	ऊ	ऐ	औ	ऋ
अ	इ	उ	ए	ओ	ऋ
इ	ई	ऊ	ऐ	औ	ऋ
अ	इ	उ	ए	ओ	ऋ
इ	ई	ऊ	ऐ	औ	ऋ

खरोष्ठी के कुछ अन्य इतिहासिक चर्च-अलोक के
का का इति- (१०-१०४)

सिम्हदेव के भारत अक्षरम्भ (326 ई०पू०) के बाद परिधिपोशा प्रदेश तथा भाखली (पंजाब) पर यूनानियों का शासन स्थापित हुआ, तो उन्होंने भी अपने सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि के अक्षरों का उपयोग किया। यूनानियों से भी पहले ईरानी शासकों ने यही के सिक्कों पर खरोष्ठी के अक्षरों के ठप्पे देखने को मिलते हैं। यूनानियों के बाद शक, क्षत्रप, कुषाण, गुप्त तथा अल्लुवर राजाओं ने भी इस लिपि का इस्तेमाल किया।

1892 में एक फ्रांसीसी बाड़ी कुचर र लिप ने खोत्रम से खरोष्ठी लिपि में खोत्रम पर लिखी हुई धम्मपद की एक प्रति प्राप्त की थी। यह धम्मपद पर लिखी हुई सबसे प्राचीन उपलब्ध मुद्रित है। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता अरिल स्ट्रॉम (1862-1943) ने पश्चिम एशिया के मक्की मक्का, यीथा, लोन-लन् आदि स्थानों से काष्ठपट्टिकाओं पर लिखे हुए सैकड़ों खरोष्ठी लेख प्राप्त किए हैं। इन काष्ठपट्टिकाओं की लंबाई 7.5 से 15 इंच और चौड़ाई 1.5 से 2.5 इंच है। कुछ चौकीदार पट्टिकाएं भी मिली हैं। ऐसी पट्टिकाओं को जब रात

में जनरल कनिंघम (1914-93) ने खरोष्ठी की संपूर्ण लेखपाला तथा संयुक्तधरों को पहचानने का काम पूरा कर दिया।¹⁰

दूसरी शताब्दी की खरोष्ठी लिपि

खरोष्ठी लिपि-दूसरी श०

द्वितीय सिन्धु के प्रान्त (पाकिस्तान) के भावलपुर नगर के उत्तर पश्चिम में स्थित मुह विहार का जोर्ण स्तूप है, जहाँ से एक साध-पत्र, जिस पर खरोष्ठी में चार पंक्तिर्था अंकित थीं उत्खनन में 46 Years) को 1869 में प्राप्त हुआ। जे० ब्राडसन ने इसका अनुवाद 1870 में किया। डॉ० यान् विन्क ने इस साध पत्र की तिथि निश्चित की। कनिष्क के राज्य के ग्यारहवें वर्ष में इसको अंकित कराया गया था। कनिष्क का काल विवादास्पद है; इस अभिलेख की भाषा पाली + प्राकृत है तथा संस्कृत का प्रभाव है।

१३	५	१५	४	३	५	३
१३	३	१५	५	५	५	६
३	५	१	६	३	५	६
३	५	३	३	३	५	६
३	५	३	५	६	५	६
५	५	३	५	५	५	३
५	३	५	५	३	५	६
५	५	५	५	६	५	५
५	५	५	५	६	५	५

खरोष्ठी लिपि-दूसरी शताब्दी- प्रो० ले.ब्र. ब्र
हमि- (P-106)

अभिलेख का लिप्यंतरण इस प्रकार है (दायें से बायें पढ़ा जायेगा)

“महाराज्य राजशिराज्य देवबुद्धस्य कनिष्कस्य संवत्सरे एकपदे सं० १०। राजसिकध्य मसस्य दिवसे अठविंशे दि २०४४ ठर दिवसे धिबुस्य नागदत्तस्य संखं कंठिस्य अचर्य दमशति शिष्यस्य अचर्यधव प्रतिष्यस्य पतिं अरोपयतो इहदमने विहार स्वमिति उपसिक्क बलनदी किंसुबिनि बल जय मत्त च इमं पतिं प्रतिठनं कपजं च अनुपरिहर ददति सर्वं सत्त्वनं। इति सुख्य धवत्तु।”

अभिलेख का अनुवाद .

“देवबुद्ध महाराजाधिराज कनिष्क के राज्य के ग्यारहवें वर्ष -सं (वत्त) १०। के राजसिक मस के अठविंशमवें दिन, धिबु नागदत्त ने जो विधि का प्रचारक, दमशति (गुरु) का शिष्य गुरु धव के शिष्य का शिष्य था, विहार की उपसिक्का दमन-कालनदी को मानने वाली और उसकी पत्नी, बलजय की पत्नी को यह स्थान प्रदान कर दिया ताकि सबको सुख व इर्न प्राप्त हो।”

खरोष्ठी के शिलालेख तथा ताम्रलेखों में ब्राह्मी का प्रचार अधिकारित। विदेशी राजाओं के सिक्कों तथा शिलालेखों आदि में मिलता है। सिक्कों में यूनानी शक छत्रप, पार्थिव कविपय कुशावर्तरी राजा तथा औदुम्बर आदि एतर्द्धस्थीय वंशों के राजाओं के सिक्कों पर के दूसरी तरफ के प्राकृत-लेख इस लिपि में मिलते हैं। खरोष्ठी फारसी की तरह दाहिनी ओर से बायीं ओर लिखी जाती थी और इसके ग्यारह वर्ण क,ख,द,न,व,ब,र,य,प,स और

इ प्रकार इस्लामीय मान्य आस्थाएं अर्थात् वे विश्वास मुसलमानों हैं। कब्रोंकी की इस्लामीय की कब्रोंमें वे अल्लाहकी ने अनुमान किया है कि "मकबरा है कि इस्लामीयों को राजकीयकाल में इस्लाम कब्रोंमें हिन्दुमतन को इस्लामीय में उनकी राजकीय जीवन आस्थाएं का कब्रों हुआ है और उनकी वे कब्रोंकी निधि का उद्घाटन हुआ है हुआ है। वे कि मुसलमानों की राज्यों के कब्रों परकी निधि का आ इस्लामी राजकीय निधि को इस देश में कब्रों हुआ और कब्रों कब्रों कब्रों अर्थात् वे उर्दू निधि कब्रों।"

सहोदारी विधि—हवारी ३०

[illegible]

આવૈશ્વિક વિનિયમ, દુબઈ, ઇસ્લામ આબાદી, ૧૯-૧૧-૨૦૧૭

וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל
 וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל
 וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל
 וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל
 וְהָיָה כִּי יִשְׁמַע ה' אֶת הַקּוֹל

संस्थान के संविधान के तहत ११ नवंबर २०१३ को संविधान के तहत ११ नवंबर २०१३ को

(समाप्त समाप्त) - बीए (A.B.)-4-2221

छात्रों की शिक्षा को जिनके माध्यम से वे अपनी भाषा ज्ञान है कि इसमें सबसे बड़ा प्रयत्न माध्यमों में इसकी सीढ़ी का मत है कि संस्कृतभाषा बहुत कम होती है जिसका अर्थ माध्यम और वाच्यवादक द्वारा भी छात्रों की शिक्षा का बहुत असरमान मिली पाठ्यपुस्तक तथा संस्कृत के संस्कृत भाषा के किन्तु बाद में इसका अर्थ है इन माध्यमों में भी छात्रों ने भी मिले । अतः छात्रों की अधिकांश इस देश में माध्यम ही गया । छात्रों के भी मूल सीढ़ी में अल्प शिक्षा प्राप्त करने के बाद है कि सीढ़ी का प्रयत्न छात्रों में ही है ।

१२३	अ	ब	५५५	५५	न	ख	५
४५	५	५५	५५५५५	५५५५५	५५५५५	५५५५५	५५५५५
२३	५	५५५	५५	५५	५५	५५	५५
५५५	५	५५	५५	५५	५५	५५	५५
५	५	५५५	५५	५५	५५	५५	५५
५	५	५५५	५५	५५	५५	५५	५५
५५	५	५५५	५५	५५	५५	५५	५५
५५	५	५५५	५५	५५	५५	५५	५५
५५	५	५५५	५५	५५	५५	५५	५५
५५	५	५५५	५५	५५	५५	५५	५५

अ	५	५	५	५
५	५	५	५	५
५	५	५	५	५
५	५	५	५	५
५	५	५	५	५
५	५	५	५	५
५	५	५	५	५
५	५	५	५	५
५	५	५	५	५
५	५	५	५	५

शरीर की लकीरों का चित्र (AK-P-222)

शरीर की लकीरों के चित्र का चित्र (AK-P-223)

१.	५	५	५	५	५	५	५	५
२.	५	५	५	५	५	५	५	५
३.	५	५	५	५	५	५	५	५

शरीर की लकीरों के चित्र का चित्र (AK-P-223)

१.	५	५	५	५	५	५	५	५
२.	५	५	५	५	५	५	५	५
३.	५	५	५	५	५	५	५	५

शरीर की लकीरों के चित्र का चित्र (AK-P-223)

शरीर की लकीरों के चित्र का चित्र (AK-P-223)

शरीर की लकीरों के चित्र का चित्र

शरीर की लकीरों के चित्र का चित्र (AK-P-223)

स्पष्ट अन्तर परिलक्षित होने लगता है। जोड़वाली में लिखा है कि "दस्तावेजित लिपियों में सर्वत्र ही समय के साथ और भेदक की उम्र के अनुसार परिवर्तन हुआ करता है। जल्दी में भी समय के साथ बहुत परिवर्तन हुआ और उनमें कई लिपियाँ बिकलीं बिकलीं अकार मूल अक्षरों से बिलकुल बदल गये। जिसको प्राचीन लिपियों का परिचय नहीं है वे मानते हैं कि ईसापूर्व ५ करोड़ कि इससे दोन की रागरी रागरी, मुसमुकी, बंगला, उदिक, तेलगु, कन्नड़ी, तमिल, मल्लम आदि सभ्यता प्राचीन लिपियों एक ही कुलीनता जाहूनी से निकली हैं।

चौथी सत्राब्दी के उत्तरार्ध में जाहूनी से अनुकूल लिपियों में विकास हो गयी। किन्तु लिपियों में उत्तरी गैली और दक्षिणी गैली कटकर जुगल है। उत्तरी गैली का प्रकार प्रायः विश्व परब के उत्तर में तथा दक्षिणी गैली का प्रकार मुख्य रूप से उसके दक्षिण में हुआ। यों कहीं-कहीं उत्तर में दक्षिणी तथा दक्षिण में उत्तरी गैली के लेश भी मिलते हैं। उत्तर भारत की सभी प्राचीन लिपियाँ जाहूनी की उत्तरी गैली से तथा दक्षिण भारत की सभी प्राचीन लिपियाँ दक्षिणी गैली से विकसित हुई हैं। कालक्रम में इन दोनों गैलियों से विकसित होनेवाली विन्म-विन्म लिपियों में परस्पर इतना अन्तर हो गया है कि आज विन्म चौथे ५ से उत्तर वाले दक्षिण की किसी लिपि को भी समझते हैं और न दक्षिण वाले उत्तर की किसी लिपि को।

जाहूनी की उत्तरी गैली से विकसित लिपियाँ

गुप्तलिपि - चौथी सत्राब्दी के उत्तरार्ध में जाहूनी की उत्तरी गैली से बिल प्राचीन लिपि का जन्म हुआ, उसका नाम 'गुप्तलिपि' रखा गया है। गुप्त लिपि (अर्थात् गुप्तकालीन लिपि) का स्वरूप प्राचीन जाहूनी से स्पष्टतः विन्म है। उसके आकारों के बिन्दु नये रूपों में परिवर्तित हो चुके हैं। उसके अनेक वर्णों की आकृति जल्दी के वर्णों से मिलती-जुलती दृष्टिगोचर होती है। दशहरणवर्ण, अ,क,ग,च,ड,ड,त,र,व,स तथा य के रूपों में दोहों पर्याप्त समान हैं। गुप्त लिपि के वर्णों की विशेषता का इतना स्पष्ट रूप से दिखाता है।

इस लिपि का प्रकार चौथी से चौथी सत्राब्दी तक सम्पूर्ण उत्तर भारतवर्ष में था। उस समय, पूर्वी भारत में गुप्तवंशी अक्षरों का राज्य था। इस कारणवत् इस युग की लिपि का विकास भी उनकी के देश के नाम के अधीन ही किया गया है। इस लिपि के जन्म गुप्तवंशी राज्यों के शिल्पियों तथा राजपट्टि में मिलते हैं। कालक्रमेण वर्णपरिवर्तनों एवं व्याकरणों के द्वारा इस लिपि का प्रकार धीरे धीरे तक हुआ जिससे प्राचीन जोड़वाली, ईरानी तथा लोखारी अक्षर लिपियाँ विकसित हुई। छठी सत्राब्दी में इसी की परिकल्पना उत्पन्न हो 'विष्णुलिपि' लिपि का विकास हुआ जिसके उत्तर 'मूलशोध' के अनुसार के थे। मूल में इसी कारण इसे 'मूलशोध लिपि' की संज्ञा दी है। शोधन में प्रायः 500-200 ई० का लिपि लेश इसी 'विष्णुलिपि' लिपि में है।

जोड़वाली के अनुसार गुप्तों के समय में कई अक्षरों की आकृतियाँ जल्दी से कुछ-कुछ मिलती हुई होने लगीं। सिरों के बिन्दु जो पहले बहुत छोटे थे अबकर कुछ लम्बे बनने लगे और स्वरों की आकृतियों के प्राचीन बिन्दु लुप्त होकर नये रूपों में परिवर्तित हो गए हैं। उदा

आदि अनेक वर्तमान लिपियों का तथा प्राचीन नागरी से बंगला, गुजराती, कौंभी, महाजनी उड़िया, नेपाली तथा वर्तमान नागरी (देवनागरी) आदि उत्तर भारत की सभी आधुनिक लिपियों का जन्म हुआ।

नागरी लिपि नागरी लिपि का उद्भव आठवीं-नवीं शताब्दी के आसपास कुटिल लिपि से हुआ। उत्तर में इसका प्रचार नवीं शताब्दी के अन्त से मिलता है, किन्तु दक्षिण में इसका प्रचार आठवीं शताब्दी के आसपास से ही होना पड़ा जाता है। दक्षिण में उपरकूट (रायौर) धरोरी तथा दन्तिदुर्ग के सामनगढ़ से मिले हुए 754 ई० के राजपत्र की लिपि ज्ञानी ही है। दक्षिण में इसको नन्दि नागरी कहते हैं।

प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से बंगला लिपि निकली, नागरी से विकसित अन्य लिपियों में कौंभी, महाजनी, राजस्थानी तथा गुजराती विशेष उल्लेखनीय हैं।

वर्तमान काल में भारतवर्ष की आर्य लिपियों में नागरी का प्रचार सबसे अधिक है। इसी प्रकार दसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही भारतवर्ष

के अधिकांश प्रदेशों में इसका प्रचार रहा है। बंगाल में भी दसवीं शताब्दी तक तो यही लिपि रही, बाद में इसी के परिवर्तित रूप से कई बंगला लिपि का विकास हुआ। पंजाब और कश्मीर में इसकी जगह शारदा का प्रचार दसवीं शताब्दी के आसपास से हुआ। नागरी से विकसित अन्य लिपियों में कौंभी, तिरहुता (मिथिलाक्षर) गुजराती, महाजनी, पालवी तथा मैथिली विशेष उल्लेखनीय हैं। दक्षिण के भिन्न-भिन्न विभागों में, 'बर्हा' सेतुगु, कन्नड़ी, ग्रन्थ तथा तमिल का प्रचार था, यहाँ भी उन सबके साथ इसका आकर

अ	आ	इ	उ	ए	ऊ
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
इ	व	म	न	त	प
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
न	प	म	म	न	त
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ
क	ख	ग	घ	ङ	च
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ

ति ॐ ॐ

चरैतुगु लिपि-आठवीं शताब्दी के अन्त (A.D. 8-10) के अन्त रहा। बिजयनगर के राजाओं के राजपत्रों की नागरी लिपि 'नन्दि नागरी' कहलाती है और अब तक दक्षिण में संस्कृत पुस्तकों के लिखने में उसका प्रचार है।

शारदा लिपि इसका उद्भव और प्रचार भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिमी हिस्सों अर्थात् कश्मीर और पंजाब में आठवीं शताब्दी के आसपास हुआ था। आठवीं शताब्दी के राजा मेरु बर्मा के लेखों से पता चलता है कि उस समय तक पंजाब में कुटिल लिपि का ही प्रचार था। अपने चलकर उसी से शारदा लिपि का उद्भव हुआ। शारदा लिपि के अब तक बिस्मने लेख मिले हैं जिनमें सर्वाधिक प्राचीन लेख सट्टही (बम्बल राज) की प्रतीति है, जो दसवीं शताब्दी के आसपास की है। आगे चलकर शारदा लिपि से ही कन्नड़की मिरासीरी, कोली, बार्मान कश्मीरी टक्करी तथा टक्करी, चम्पा, पण्डेआली, जैनसारी, कुरुतुरी, लच्छा तथा डोगरी आदि लिपियों का विकास हुआ।

सिद्धांत	सिद्धांति			संख्या-संकेत	संख्या	सिद्धांत	सिद्धांति			संख्या-संकेत	संख्या
	१-१०	१-१०	सुगु-सिद्ध				१-१०	१-१०	सुगु-सिद्ध		
१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१	१
२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२	२
३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८	८
९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९	९
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०
११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११	११
१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२	१२
१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३
१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४
१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५	१५
१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६
१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७
१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८	१८
१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९	१९
२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०

सिद्धांति और इसके निमित्त सिद्धांत को (A.K.P-320)

सु-मेरु सिद्धि

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०
५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०
६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०
७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०
८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०
९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००

सु-मेरु सिद्धि को (L.A.M.P-403)

सु-मेरु सिद्धि

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८	४९	५०
५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०
६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०
७१	७२	७३	७४	७५	७६	७७	७८	७९	८०
८१	८२	८३	८४	८५	८६	८७	८८	८९	९०
९१	९२	९३	९४	९५	९६	९७	९८	९९	१००

सु-मेरु सिद्धि को (L.A.M.P-404)

ਧਾਰਮਿਕ ਚਿੰਨ੍ਹ



ਧਾਰਮਿਕ ਚਿੰਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਗਣਨਾ ੧-੫੫੫

ਧਾਰਮਿਕ ਚਿੰਨ੍ਹ



ਧਾਰਮਿਕ ਚਿੰਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਗਣਨਾ ੧-੫੫੫



ਧਾਰਮਿਕ ਚਿੰਨ੍ਹ (੧) ਦੀ ਗਣਨਾ ੧-੫੫੫

ਧਾਰਮਿਕ ਚਿੰਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਗਣਨਾ



ਧਾਰਮਿਕ ਚਿੰਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਗਣਨਾ ੧-੫੫੫

गुरुमुखी लिपि

ॐ	अ	इ	उ	ए	ओ	क	ख
ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब	भ	म	य
र	ल	व	श	ष	स	ह	ळ
ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ	ॐ

ਪ੍ਰਮਾਣੀ ਕੋਡ (LKG-P-179)

ગુજરાતી લિપિ

अ आ इ ई उ ऊ ऋ
 ए ऐ ओ औ अं अः
 क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ
 ट ठ ड ढ ण त थ द ध न
 प फ ब भ म य र ल व
 श ष स ह ळ ण क्ष त्र ण

गुणकारी विधि स्पेल (LACI-F-162)

स्मरणार्थ लिपि

[illegible]

लघुपत्र लिखि कोट (LPGI-P-178)

डाकरी लिपि

अ आ ई औ इ ए ऊ
 ऋ ॠ ॡ ॢ ॣ । ॥
 क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ
 ट ठ ड ढ ण त थ द ध न
 प फ ब भ म य र ल व श
 ष ह ण ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
 ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
 ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
 ० १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

टाइप्री लिपि स्रोत (LKM-P-17B)

अनिराकर लिपि

म	६	६	६	६
m	00)	6	c	c
म	म	म	म	६
m	v	32	5	20
म	म	म	म	म
v	2	40	3	25
६	६	म	म	६
2	2	j	2	2
म	२	म	म	६
२	11	2	0	3

मोड़ी लिपि- सप्तह्रस्वी ज्ञ०

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	य	र	र	ल	ल	ल	ल
अ	अ	क	ख	ग	घ	ङ	ञ
अ	अ	म	न	प	त	थ	द
अ	अ	ड	ड	ड	ड	ड	ड
अ	अ	ड	ड	ड	ड	ड	ड
अ	अ	ड	ड	ड	ड	ड	ड
अ	अ	ड	ड	ड	ड	ड	ड
अ	अ	ड	ड	ड	ड	ड	ड
अ	अ	ड	ड	ड	ड	ड	ड

मोड़ी लिपि-सप्तह्रस्वी सप्तह्रस्वी ज्ञ० (LJKJ-P-181)

बैथिल लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ
अ	उ	उ	क	र	ख	घ	ङ

बैथिल लिपि ज्ञ० (LJKJ-P-182)

मिगुलीय लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ

मिगुलीय लिपि ज्ञ० (LJKJ-P-183)

मोजपुरी लिपि

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ

मोजपुरी लिपि ज्ञ० (LJKJ-P-184)

राजदण्ड घात के लेखों में पुरानी नागरी के केंचल 'ए', 'ख' आदि कुछ अक्षरों में बंगला की ओर झुकता नजर आता है। ग्यालठवीं शताब्दी के घालबंदी उच्च विजयपाल के देवफल के लेख में ए, ख, त, म, र, ल और स में नागरी से थोड़ी सी भिन्नता है और कामरूप के वैष्णव के शानधर, आसाम से भिसे हुए बल्लभेन्द्र के राजदण्ड और इन्द्रकोल के लेख की लिपियों में से प्रत्येक को नागरी से मिलाया जाय तो अ,इ,ई,ऊ,ए,ऐ,ख,घ,ज,झ,ब,प,फ,र,ल और क में अंतर पाया जाता है। इस प्रकार नागरी की संरचना शैली में कथमः परिवर्तन होते-होते वर्तमान बंगला लिपि बनी।

कैथी एक महत्वपूर्ण एवं स्वतंत्र लिपि थी इसका उपयोग संलग्न संपूर्ण उत्तरी भारत में होता था जिसमें बिहार और उत्तर प्रदेश के राज्य सम्मिलित थे। इस लिपि का उपयोग खीरतस, त्रिनिदाद एवं अन्य बैसे जगहों में जहाँ उत्तरी भारत की मूल आबादी गयी वहाँ भी होती थी। कैथी लिपि का प्रयोग श्रीजपुरी, मगही, उर्दू, मैथिली सहित अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के लिखने के लिए होता था।

कैथी लिपि में श्रितिंग के कार्य भी होते थे। इसका संबंध देवनागरी, मुबलती इतिहास उत्तरी भारत में प्रचलित कई अन्य लिपियों के साथ था।

मिलहॉटी नामकी महाजनी एवं अन्य समान लिपियों के लिए तो कैथी पूर्वज की छत्र है। इस लिपि का अध्ययनों में शक्ति लोकप्रियता के कारण इस लिपि का उपयोग उत्तर भारत में प्रचलित देवनागरी, फारसी एवं अन्य लिपियों के साथ भी हुआ।

उत्तर भारत के उपजाऊल समान में कैथी की उपयोगिता का अनुमान कैथी लिपि प्रयोग करनेवालों की संख्या एवं इस लिपि में तैयार हुए दस्तावेजों की देखकर किया जा सकता है। सांख्यिक कथों में कैथी का उपयोग उत्तरी भारत में 16वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक हुआ।

संदर्भ संकेत :

1. अक्षर कथा, गुणकर मूले अध्याय-1, पृष्ठ-3
2. डॉ० अनन्त चौधरी, नागरी लिपि और हिन्दी वर्णों
3. अक्षर कथा, गुणकर मूले अध्याय-1, पृष्ठ-3
4. उपरिक्त, पृष्ठ-4
5. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिकंकर प्रसाद 'सत्यम', अध्याय-1, पृष्ठ-18-19
6. अक्षर कथा, गुणकर मूले, अध्याय-1, पृष्ठ-4
7. उपरिक्त, अध्याय-1, पृष्ठ-6
8. अंग लिपि का इतिहास श्री हरिकंकर प्रसाद 'सत्यम', अध्याय-1, पृष्ठ-21
9. अक्षर कथा, गुणकर मूले, अध्याय-1, पृष्ठ-9
10. अंग लिपि का इतिहास श्री हरिकंकर प्रसाद 'सत्यम', अध्याय-1, पृष्ठ-21
11. अक्षर कथा, गुणकर मूले, अध्याय-1, पृष्ठ-11
12. उपरिक्त, अध्याय-1, पृष्ठ-12
13. उपरिक्त, अध्याय-1, पृष्ठ-13
14. डॉ० अनन्त चौधरी, नागरी लिपि और वर्णों पृष्ठ-11

15. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिनाथ प्रसाद 'शस्त्रधर', अध्याय-1
16. उपरिबत्
17. उपरिबत्
18. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-21, पृष्ठ-207
19. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिनाथ प्रसाद 'शस्त्रधर', अध्याय-1
20. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-21, पृष्ठ-211
21. उपरिबत्, अध्याय-21, पृष्ठ-213
22. उपरिबत्, अध्याय-21, पृष्ठ-214
23. उपरिबत्, अध्याय-21, पृष्ठ-215
24. उपरिबत्, अध्याय-21, पृष्ठ-216
25. उपरिबत्, अध्याय-21, पृष्ठ-217
26. उपरिबत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
27. उपरिबत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
28. उपरिबत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
29. उपरिबत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
30. उपरिबत्, अध्याय-22, पृष्ठ-221
31. उपरिबत्, अध्याय-24, पृष्ठ-233
32. उपरिबत्, अध्याय-24, पृष्ठ-233
33. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिनाथ प्रसाद 'शस्त्रधर', अध्याय-2, पृष्ठ-23
34. उपरिबत्, अध्याय-2, पृष्ठ-28
35. उपरिबत्, अध्याय-2, पृष्ठ-29
36. अक्षर कथा गुणाकर मूले अध्याय-24, पृष्ठ-233
37. उपरिबत्, अध्याय-24, पृष्ठ-234, 235
38. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिनाथ प्रसाद 'शस्त्रधर', पृष्ठ-30
39. अक्षर कथा गुणाकर मूले अध्याय-25, पृष्ठ-237
40. उपरिबत्, अध्याय-25, पृष्ठ-237
41. उपरिबत्, अध्याय-25, पृष्ठ-241,
42. अंग लिपि का इतिहास, श्री हरिनाथ प्रसाद 'शस्त्रधर', अध्याय-2, पृष्ठ-31
43. उपरिबत्, अध्याय-2
44. अक्षर कथा, गुणाकर मूले, अध्याय-26, पृष्ठ-248
45. उपरिबत्, अध्याय-26, पृष्ठ-250
46. उपरिबत्, अध्याय-26, पृष्ठ-256
47. उपरिबत्, अध्याय-26, पृष्ठ-256
48. उपरिबत्
49. उपरिबत्, अध्याय-27, पृष्ठ-260
50. उपरिबत्
51. उपरिबत्
52. उपरिबत्, अध्याय-27, पृष्ठ-262
53. उपरिबत्, अध्याय-27, पृष्ठ-263
54. उपरिबत्, अध्याय-27, पृष्ठ-263

कैथी लिपि का इतिहास

कायस्थों की लिपि - कैथी

विद्वान् लेखक अशोक कुमार वर्मा ने अपनी किताब 'कायस्थों की सामाजिक पृष्ठभूमि' में लिखा है कि कायस्थों के आदिपुरुष भगवान चित्रगुप्त ही अंग लिखक हुए। उन्होंने ही केंद्रों को 'क्षुति-स्मृति' के स्वरूप और परम्परा से भुक्त कर लेखनीबद्ध किया। इसलिए उन्हें वेद-अक्षर दाता कहा गया है। भगवान चित्रगुप्त के वंशज कायस्थ जाति के लोग लेखकीय पेशा से सम्बद्ध रहे हैं। यद्यपि पूर्व में लेखन कला को कई क्षेत्रों से अस्पृश्यता माना जाता था, फिर भी 'कायस्थों' ने इस परम्परा की परिधि से निकलकर एक लिपि का आविष्कार किया। यह लिपि भी 'कैथी लिपि' जो प्राचीनतम लिपियों में से है। हो सकता है यह लिपि भगवान चित्रगुप्त द्वारा आविष्कृत हो, जिसे वेद-परम्परा या शिष्य परम्परा में कायस्थों ने अपना लिया। जो भी हो, परन्तु लिपि का आविष्कार कर कायस्थों ने समाज की अहम आवश्यकता की पूर्ति कर अपना और समाज का बहुत बड़ा दिय किया।

कैथी लिपि की प्राचीनता और व्यापकता के संबंध में कोशी अंचल के एक जाने-माने विद्वान् श्री हरिशंकर श्रीवास्तव 'रास' ने अपनी पुस्तक 'अंगिका लिपि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' में विस्तृत रूप से चर्चा की है।

जॉर्ज अलाहम प्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'भारत का भाषा सर्वेक्षण' में लिखा है - "कैथी लिपि उसी लिपि का नाम है, जो उत्तर भारत में 'कैथ' या कायस्थ नामक एक लिपिक जाति में प्रचलित है। यद्यपि कहीं कहीं अन्य प्रचलित अक्षरों के अभाव के कारण यह लिपि परिपूर्ण नहीं है तथापि इस लिपि के तथा देवनागरी लिपि के बीच यही सम्बन्ध है जो लिखित अंग्रेजी और मुद्रित अंग्रेजी के बीच है। गुजरात के दक्षिण इलाकों से लेकर कोशी तट तक

संपूर्ण उत्तरी भारत में आधारगत: कौची लिपि का प्रचलन है : इतने विस्तार परिसर में स्वभावतः इसके अनेक रूपान्तर हो गए हैं । ये रूपान्तर कुछ स्थानीयता के कारण तथा कुछ व्यक्तिगत लेखन-शैली के कारण हुए हैं । बिहार में निम्न जाति के लोगों को शिक्षित करने में इस लिपि का भरपूर उपयोग होता है क्योंकि देवनागरी लिपि का ज्ञान उनके लिए अशक्य सम्पत्ति जाता है । गुजरात में इस लिपि को जातीय लिपि का गौरव प्रदान किया गया है । वहीं हाल ही में इस लिपि का मुद्रण आरंभ किया गया था जो वर्तमान पीढ़ी के लोगों को स्मरण है । गुजराती भाषा में सबसे पहले जो ग्रन्थ छपा था वह मुद्रणालय में देवनागरी टाइप में मुद्रित हुआ था । इसमें संयुक्ताक्षर बहुत कम होता है । जो संयुक्ताक्षर का रूप मिलता है, वह स्वतः पहचान में आ जाता है । बिहारी भाषा में जो कौची लिपि प्रचलित है उसमें कुछ-कुछ स्थानीय रूप भेद हैं एवं तदुत्तर इसके तीन प्रपेद परिलक्षित होते हैं - मिथिला की कौची, मगध की कौची तथा जौनपुरी लिखने की कौची ।

शंकरानन्द स्वामी ने 'दि इन्डस पीपुल्स स्पीकर्स' में प्राचीन सिन्धु-सम्बन्ध की एक अन्य पद्धति का या मुहर के सम्बन्धों को तन्त्रिक आधार पर 'कभ' पड़ा है ।

'कौच' उपनिषद् काल की एक द्रुवि जीवी और मसीजीवी जाति थी । संभवतः कायस्थ जाति से यह तन्त्र पद्धति का या मुहर सम्बन्धित है ।

सिन्धुघाटी की विव्रलिपि को पढ़ने-समझने के काम में भागलपुर के खिल परिवान पराधिकारी स्वर्गीय विरल कुमार वर्मा ने संघर्षों के गुरु की सहायता से जो वर्णमाला तैयार की है उसमें संघर्षी भाषा में 'क' और 'घ' की व्यंज्यि नहीं है जिसे शंकरानन्द स्वामी ने 'कभ' कहा है।

भाषाविद् श्री टोबेकर इस के अनुसार कौची लिपि इसी 'कभ' जाति से सम्बंधित है, जो अन्ततः उत्तर भारत की जनलिपि के रूप में अद्यावधि प्रचलित है । पुनः काल में इस जाति की सम्बन्धन शब्दां भाष्य से काठिमायाद तक फैली थी । वर्तमान कौची लिपि के सम्बन्ध के परिप्रेक्ष्य में अंगिका साहित्य के विद्वान् डा० तेजनाथराय भुवाबाबा की पुस्तक "अंगिका भाषा का इतिहास" के अनुसार, "कौची लेखन में हिंदीरेखा नहीं होती और न ही संयुक्त वर्ण उसमें होते हैं । वह कायस्थों में विशेष लोकप्रिय रही क्योंकि लेखन-कार्य साधारणतः वे ही किया करते थे । इसलिए कौची का मायांतर रूप कायस्थी भी प्रचलित हुआ । 'कायस्थी' कायस्थों की लिपि का अर्थ में व्यवहृत हुई है । कौची के संयुक्ताक्षर विहीन-प्रवृत्ति होने के कारण शब्द कायस्थी कायस्थी-कौची में विकसित हुआ अंगिका, पोजपुर हिन्दुत और मगध की लिपि कौची अथी हाल के वर्षों तक अमस्त उत्तर भारत की राष्ट्रीय लिपि थी ।" ४

बंगाल के भाषाविद् डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक 'ओरिएन्टल एण्ड डेक्लरमेंट ऑफ द बंगाली लिपिज (पृष्ठ 224-225) और डा० जयकान्त मिश्र ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी ऑफ मैथिली लिटरेचर (पृष्ठ-67-68) में पूर्वोक्त वर्णमालाओं का बंगला, असमिया, मैथिली और उड़िया लिपि के संबंध में विस्तृत वर्णन किया है । उन्होंने लिखा है कि "ए. एलोपलीय वर्णमाला गुप्तकालीन (400-500 ई.) वर्णमाला का एक भेद है जो 48 अक्षरों की लिपि का इतिहास

उत्सव "एथनोलॉजिक इंडिया" खण्ड-4, पृष्ठ संख्या- 195 में आया है। यह ग्रन्थ कौची लिपि में है। इसग्रन्थके सम्पादन में, यद्यपि अपने को द्वितीयस्तरीय मानते थे। उस ग्रन्थ में उन्होंने अपने संबंध में लिखा है -

“कौचीलिपि लिखितकाल आठव्यां शताब्दीमें है।”

हस्तलिखित के पत्र में हस्तलिखित के कालीय ग्रन्थ में अधिकारों में। एथनोलॉजिक इंडिया के उत्तरी पृष्ठ में उद्धृत है कि उन्होंने अपने को कालिगुप्तकाली कहा है। जिस साक्ष्य पर संधीधरा का उपनिषत् परिचय है, वह कौची लिपि में है, पर उसकी भाषा संस्कृत है।”

इण्डिया अर्थिकस सर्विसेस की संस्कृत पत्रिका के सूचीपत्र प्रकाश संख्या - 1080 (भाग-2, पृष्ठ-386) से स्पष्ट है कि बरारुड अक्षर के काल में गोकर्ण नामक ग्रंथ की एक पाठशाला में उपन्यास नामक शिक्षक कार्यरत थे। उन्होंने संवत् 1616 ई। में ‘समस्तोक्त’ नामक पुस्तक लिखी जो बिसकी लिपि कौची थी।

इस विवरण के समय संपूर्ण विभिन्न क्षेत्र के सम्पूर्ण विभिन्नकार (विद्वान्) तथा सम्पूर्णतरावृत्ति के लोग कौची लिपि का प्रयोग करते थे। कर्मचर कुल में जयपौर की सम्पूर्ण एक सम्पूर्णतरों के सम्पूर्णतरों में कौची लिपि का ही प्रयोग किया जाता था है।

इस विवरण की दृष्टि में कौची एक स्वतंत्र लिपि है। वह कौची को लिखती भाषा की लिपि मानते हैं। उन्होंने कौची को सुन्दर और सुन्दर रूप देने के विचार से एक पुस्तक लिखी “एथनोलॉजिक इंडिया कौची कौची”। वे लिखते हैं कि संपूर्ण लिखती भाषा क्षेत्र में कौची प्रचलित है। अत्यधिक पूर्ण एवं सुन्दर लिपि के साथ-साथ वह ही संपूर्ण भाषा में प्रचलित होती रही है। उन्होंने कौची का विशेष अध्ययन और अनुसंधान किया था। वे विचार में कौची का अभिवृत्ति प्रयोग करते थे। विचार के तत्कालीन संविष्टरमें कर्मचर एंसेले एंडन भी कालिगुप्त में प्रचलित लिपि के स्थान पर कौची या कौची लिपि के प्रचलन के पक्षधर थे। उन्होंने इस विवरण को संयुक्त-प्रतिष्ठित तथा विष्टी कालिगुप्त कालक कौची लिखती को टाइप में हस्तलिखित का काम किया। इस विवरण ने उस पर पर कर्मचर प्रयोग कर कौची लिखती को हस्तलिखित लिखती विष्टी कालिगुप्त काल में प्रचलित हुई थी।

यद्यपि: यद्यपि से ही वह ऐसा था कि सम्पूर्णतरावृत्ति को अभिवृत्ति वर्ग के लोगों द्वारा लेखन एवं पठन-प्रचलन के लिए उपयुक्त होती रही है। इसी के सम्बन्धित सम्पूर्णतरावृत्ति के लिए भी कौची कालिगुप्त काल कालिगुप्त के रूप में उत्तरी लिपि से विकसित होती आई है। वह एक सम्पूर्णतरावृत्ति है। कौची लिपि का विकासक्रम ऐसा ही है। वह बहुमूल्य में सम्पूर्णतरावृत्ति की लिपि रही है। कर्मचर उत्तर भारत की मुख्य लिपि देवनागरी लिपि है। अतः कौची लिपि देवनागरी लिपि के सम्पूर्णतरावृत्ति ही विकसित हुई है।

अधुनिक काल में कौची एक सम्पूर्णतरावृत्ति भाषा है जिसकी अपनी लिपि है विद्वान् और विद्वान् परिचरित नाम विभिन्नतरावृत्ति है। कौची सम्पूर्णतरावृत्ति को कालिगुप्त लिपि है, उत्तरी

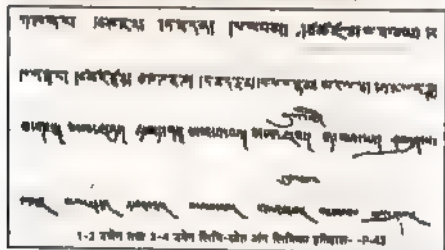
वर्षों तक रहा है ।

श्री राजेश्वर झा ने 'विधिलेखांक उद्भव्य ओ विकास' नामक मैथिली भाषा की पुस्तक में कहा है कि "मगध ब्राह्मणों का केन्द्रस्थल था । ब्राह्मण सङ्घों आदिवासियों का एक प्रबल पुनर्गठन दल था , वे ब्राह्मणों के अनुशासन में नहीं रहकर वर्णश्रम के आधार पर ब्राह्मण ब्राह्मण, क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य और ब्राह्मण शूद्र में विभक्तित थे । सभ्यता के अत्यंत उत्थान से ही मगध की राजनीति एवं धर्म दोनों में ब्राह्मणों की प्रधानता थी । समस्त उत्तर भारत ब्राह्मणों के साहित्य भाषा लिपि एवं गणतंत्रात्मक सिद्धांतों से अत्यंत प्रभावित था । वस्तुतः ब्राह्मणों के स्कोकोत्तर व्यापक सिद्धान्त सभ्यता, भाषा और लिपि सामान्यतः ब्राह्मणों द्वारा निरूपित उपेक्षित होते रहे । फिर भी वे समग्र मगध एवं पूर्वीय प्रदेशों के पथ्य प्रसारित हुए जिसका स्पष्ट प्रमाण उत्कलसीन गुप्त चरित्रों से स्पष्ट साक्ष्य पर पाया जाता है ।" (पृष्ठ-६) आगे भी इस कहते हैं ,

"ब्राह्मणों की भाषा को 'सादृश' और उनकी लिपि को 'वस्तुल' लिपि कहा गया था । ब्राह्मणों का अर्थ कुल-वर्ण एवं गोत्रकार पदार्थ है । सिन्धु के पर्यटकों के विचार अपने के पूर्व 'वस्तुल' या 'वैकल' लिपि का अध्ययन आवश्यक होता था । इसी आधार पर सिन्धुतियों ने अपनी लिपि का निर्माण किया । डा० एम.सी.राम और डा० डी.सी.टर्नर ने सिन्धु के दिन प्रसिद्धि के अवसर को उभने लिपि का बहुत प्रस्तुत किया है जो खैची लिपि से बहुत मिलती है।"

इसी पुस्तक में दूसरी जगह श्री झा यह भी कहना है :

"सिन्धु की उभने लिपि, जो कदा की अवलिपि के रूप में प्रचलित है जो वस्तु-ई-वीमे या वस्तुल लिपि भी कहा जाता है । वस्तुल एवं खैची एक ही प्रतीत होती है जो आर्य आरंभ से ही बिहार प्रान्त में अवलिपि के रूप में प्रयुक्त होती थी तथा पठन-पाठन के लिए ब्राह्मणों का प्रयोग होता था जो सिन्धु लिपि का परिवर्तित और परिचरित रूप है ।"



"डा० अश्वमेध ने 'वस्तुल लिपि' को बिहार में प्रचलित मैथिली और बंगाल का पूर्ववर्ती रूप

(4173 ई०) का लेखक श्रीपति कायस्थ था। कलानुरी राजा प्रतापमल के पेंदराबंध प्रसंग का प्रसिद्ध लेखक प्रतिष्ठ कायस्थ था, संश्रुत वर्षवर्धन (628 ई०) का लेखक ईश्वर नामक कायस्थ था। गणेशवर्धन का लेखक था गोविन्द नामक कायस्थ। मिथिला के कर्नाटवंशी राजाओं के चार लेखक नरहता और हरदत्ता नामक कायस्थ थे। कर्नाटवंशी राजा नान्ददेव के अन्यकटपदी विजयलेख को श्रीधर दास नामक कायस्थ ने लिखा था।¹⁷

कौंशी में शिलालेख: अनेक लेखकों ने यह स्वीकार किया है कि कौंशी प्राचीन लिपि है। परन्तु कौंशी लिपि में शिलालेख या प्रस्तर अभिलेख आदि की चर्चा बहुत कम दस्तावेजों पर मिली है। विद्वानों का मत है कि कौंशी प्राचीन समय में भी जन की लिपि रही थी और 1000 वर्ष पहले ही यह राजकीय लिपि या शासकीय लिपि के रूप में अंगीकार की गयी थी। शिलालेख अदि कार्य-रक्षक द्वारा कराए जाते थे और इस कारण इसमें कौंशी लिपि का होना अधिक सुसंगत नहीं लगता।

कौंशी लिपि में शिलालेख एवं पुरालेख बहुत कम मात्रा में मिले हैं। वर्ष 2001 में भारत कायस्थ पञ्च, बनारस द्वारा प्रकाशित लेख में चर्चा की गयी है कि बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भवन-कला पञ्चनस्थित पुरातत्विक-गैलरी में तांबा के प्लेट पर संस्कृत के कुछ खम्ब लिखे हुए हैं जो कौंशी लिपि में हैं। वे वाक्य पश्चिमोत्तर प्रदेश के कान्यकुब्ज के गहरलख राजवंश के राजा काबचहादुर चन्द्रदेव (1098 ई.) द्वारा राज में दी गयी भूमि के संबंध में हैं। यद्यपि वाक्य लिखित रूप से कौंशी में ही लिखे गए हैं तो कौंशी में उत्कीर्णित वाक्य वाक्य-पुस्तक अभिलेख नहीं होना।¹⁸

आज की हिन्दी बिसयी लिपि देवनागरी है। कायस्थों द्वारा प्रतिपादित कौंशी लिपि एक प्रतिनिधित्व रूप है। विश्व में कोई भी भाषा या लिपि किसी जटिल विशेष के नाम पर उत्पन्न नहीं है। एकमात्र “कौंशी” ही ऐसी लिपि है जो कायस्थों द्वारा रची गई एवं जनो-जन-पर इसका उपयोग किया गया।¹⁹

संदर्भ-संकेत:

1. कायस्थों की समाजिक-पृष्ठभूमि, श्री-अशोक कुमार वर्मा, पृष्ठ - 110-118
2. अंगिक लिपि का इतिहास, डा० हरिदास श्रीवास्तव ‘शतम’
3. भारत की भाषा-सर्वेक्षण, जॉर्ज अन्नास ग्रियर्सन, खंड-5, भाग-2, पृष्ठ-14-15
4. दि-इन्डस नौथुल स्पीकर्स, रंजनन्द स्वामी, पृष्ठ-65
5. उपरिक्त
6. अंग लिपि का इतिहास, डा० हरिदास प्रसाद ‘शतम’
7. विश्व भाषा, मार्च-जून, 1969, श्री राजेश्वर झा
8. डा० राजनारायण कुशवाहा, ‘अंगिक भाषा का इतिहास, पृष्ठ 21-22
9. अंग लिपि का इतिहास, डा० हरिदास प्रसाद ‘शतम’, पृष्ठ - 52
10. उपरिक्त
11. भाषा का भाषा सर्वेक्षण, डा० जॉर्ज अन्नास ग्रियर्सन, पृष्ठ - 26

12. अंग लिपि का इतिहास, डा० हरिसंकर प्रसाद 'शलभ', पृष्ठ - 46
3. उपरिखत्
14. उपरिखत्
15. मिथिला भारती, मार्च-जून, 1969, श्री राजेश्वर झा, पृष्ठ -62
16. कादम्बिनी, 1992
17. कादम्बिनी 1999
18. अंग लिपि का इतिहास, डा० हरिसंकर श्रीवास्तव 'शलभ' पृष्ठ-54
19. मैथिली साहित्य का इतिहास डा० गंगा नाथ झा श्रीर', पृष्ठ 413
20. मिथिलाक्षरक उद्भव ओ विकास, श्री राजेश्वर झा, पृष्ठ, 6, 7, 12
21. वही पृष्ठ- 12
22. मैथिली साहित्यक आदिकाल, डा० उमेश मिश्र, पृष्ठ - 18,19
23. मिथिलाक्षरक उद्भव ओ विकास, श्री राजेश्वर झा, पृष्ठ - 12
24. मैथिली साहित्यक आदिकाल, डा० उमेश मिश्र, पृष्ठ - 39
25. मिथिला भारती, मार्च-जून, 1969
26. मैथिली साहित्य का आदिकाल श्री राजेश्वर झा पृष्ठ - 21
27. अंग लिपि का इतिहास, डा० हरिसंकर श्रीवास्तव 'शलभ', पृष्ठ 54
28. प्रोबोजल दू इनकांठ द कैथी स्क्रिप्ट इन आर्वाइसको/आर्वाइसी 10646, अंग्रेजी-कैथी, यूनिवर्सिटी ऑफ मिसिसिपि यूएसए पृष्ठ 22
29. कैथी लिपि चित्रांशों को प्रगोहर, वि. मनोज सन्तकर श्री चित्रगुप्त अरि प्रबन्धक साहित्य, फटना सिटी स्पारिक 2008

“... ..”

“... ..”

“... ..”

“... ..”

“... ..”

“... ..”

“... ..”

कैथी लिपि में धार्मिक ग्रंथ

साहित्यिक और धार्मिक ग्रंथ - कैथी लिपि का उपयोग प्रारम्भिक और व्याकरण के क्षेत्र में होने से यह साहित्यिक चीजों से अलग होती गयी लेकिन कैथी की शुरुआत में साहित्यिकता के कारण धार्मिक एवं साहित्यिक कार्यों के लिए इस लिपि का उपयोग किया गया। चूंकि शुरूआती लिखने एवं टिप्पणी लिखने का एकमात्र साधन कैथी के पास उपलब्ध था, अतएव इसे दोनों कार्यों के लिए उपयोग किया जाने लगा। कैथी का उपयोग पाण्डुलिपियों की रचना में भी होने लगा। कैथी एवं देवनागरी दोनों लिपियों का एक ही पाण्डुलिपि में उपयोग होना इस बात को दर्शाता है कि साहित्यिक क्षेत्र में कैथी का महत्व देवनागरी से कमिष्ठता वाला था।

प्रारम्भिक धार्मिक ग्रंथ पाण्डव युद्ध से शिक भक्त 'सुयम्नचरित' नामक छोटी इच्छा एक उदाहरण है। पूर्वतः कैथी लिपि में लिखे गए किताब पारकड़ी नामा में है। यह पाण्डुलिपि एकसमय के विद्वाने नामक शहर में पकी गयी है और यह ठानीखी सतब्दी की किताब है। चूंकि इसकी भक्त पारकड़ी है अतएव कैथी लिपि को महाजनी लिपि के रूप में भी दर्शाया गया है। कैथी लिपि को एकसमय और गुजरात के विभिन्न इलाकों में महाजनी लिपि के रूप में भी बोली जाती है। लेकिन जब इसके अक्षरों की तुलना कैथी लिपि से की जाती है तो समझना सभी अक्षर कैथी से मिलते हैं। दूसरा उदाहरण 'मिरगावली' नामक ग्रंथ है। सुतब नामक विद्वान ने इसकी रचना अथर्वी भाषा में की थी। इसकी रचना वर्ष 1503 में फारसी में हुई थी। सूरी के पांच प्रमुख पाण्डुलिपियों में से चार कैथी लिपि में लिखी गयी और एक फारसी में लिखी गयी। 16वीं सतब्दी में 'पद्मचन्द्र' नामक संस्कृत ग्रंथ की रचना हुई। इसके रचनाकार भक्ति मुनि नामक व्यक्ति थे और इसकी रचना भी अथर्वी में हुई थी। फारसी लिपि में रचित इस ग्रंथ के अक्षरों के कई पाण्डुलिपियां कैथी में पाई गई हैं।

हालांकि हिन्दू धार्मिक ग्रंथों के लिए देवनागरी के प्रयोग को प्रोत्साहित ही नहीं, परन्तु धार्मिक ग्रंथों को तैयार करने में कौची लिपि का भी प्रयोग किया गया। हिन्दू के प्रतिष्ठित धार्मिक ग्रंथ 'महागणपतिस्तोत्र' की पाण्डुलिपि का महत्व इस भावने में बढ़ जाता है कि इसके पृष्ठों पर देवनागरी और कौची दोनों लिपियों में प्रविष्टियाँ हैं। संस्कृत भाषा में श्लोक लिखे गए हैं जिसकी लिपि देवनागरी है, लेकिन श्लोक के अर्थ, हालांकि ये भी संस्कृत में ही हैं, ये मैथिली शैली के कौची में लिखे गए हैं। इस ग्रंथ के अंतिम कुछ पृष्ठों पर भोजपुरी शैली के कौची में प्रविष्टियाँ हैं। जीवापोस्थामी द्वारा रचित संकल्पपत्र जिसे विद्वान् मुन्नाजी और राईट महोदय ने बसीयत दस्तावेज की शृंखला दी है इसकी रचना ब्रजभाषी संस्कृत में और नागरी कौची लिपि में की गयी है, इस पाण्डुलिपि में मुन्नाकाश से सुंदावन में जीवा पोस्थामी द्वारा स्थापित चैतन्यपंथ गौडिया वैष्णव संप्रदाय के मंदिरों के रखा-रखाव, पुस्तकालयों की व्यवस्था में विस्तार से वर्णन है।

कुलमीचास द्वारा रचित रामचरितमानस के कई पाण्डुलिपियाँ कौची में हैं। 17वीं शताब्दी में तैयार किए गए पाण्डुलिपियों में कम से कम दस प्रतिष्ठित पाण्डुलिपियाँ कौची लिपि में हैं। घाट, इंग्लैंड एवं संयुक्त राज्य अमेरिका में रहित कुछ व्यक्तियों धार्मिक ग्रंथों की निम्न सूची है :

(क) 'महागणपतिस्तोत्र' (रघुनाथपुर-अज्ञात) : निम्न-निम्न श्लोक देवनागरी और कौची लिपि में लिखे गए हैं। वर्तमान में यह पाण्डुलिपि कैलेश्वरानिध विभवविद्यालय में रक्षित है और इसका कैलेश्वर नंबर -1876, पेन्सिलवैनिया विश्वविद्यालय का नंबर-2584 है। इस पाण्डुलिपि का आकार 22.3 से.मी. गुना 11.9 से.मी. है और एक पृष्ठ में श्लोक के अठस से नौ भक्तियाँ हैं। कौची में जो श्लोक लिखे गए हैं उसका भाग लगभग एक तिहाई है।

(ख) सुंदरमाचारित (सुंदरमा की कहानी) : यह पुस्तक वर्ष [745-8 (संभव 1892) में विवरण में लिखी गयी। इस पुस्तक की भाषा मारवाड़ी है और यह कौची लिपि में लिखी गई है। सुनारले-रंग की-रुहड़ी में रहित यह पुस्तक बाहर कलस में भी अज्ञात है। यह किताब 43 पंक्तियों की है और एक पृष्ठ में 24 पंक्तियाँ हैं। पृष्ठ के बाईए पग में 42 चित्रमाला दी गयी है जो पृष्ठ के चौड़ाई पग में है। किताब की की उपस्थिति 29 सेमी गुना 19.2 सेमी है।

(ग) निम्नामाली : सुंदावन द्वारा रचित यह ग्रंथ मूल रूप से अथर्व वेद में और फारसी लिपि में 1903 ई. में तैयार किया गया था। सुफ़ी समुदाय के छः प्रमुख ग्रंथों में से चार ग्रंथ कौची लिपि में ही तैयार किए गए थे और ये निम्न थे चौखाम्बा (मूल-कन्नड, लिपि-कौची नागरी), घाट कला धवन (मूल-कन्नड, लिपि-कौची), अणु संस्कृत पुस्तकालय (मूल- बिकानेर, लिपि-कौची) मनेर शरीफ (मूल-फरान, लिपि फारसी) और दिल्ली (मूल-दिल्ली, लिपि फारसी), इकबाल (मूल-फतेहपुर, लिपि-कौची)।

पञ्चाचार एवं व्यक्तिगत संरक्ष

कैथी का उपयोग व्यक्तिगत स्तर पर निजी पञ्चाचार पारिवारिक दरतावज और व्यावहारिक लेखा के लिए सम्मान में प्रचलित था। अंग्रेज इाकिम थॉमस मेटर्नाफ द्वारा इस संबंध में टीक हो लिखा गया है कि कैथी एक महाजनो लिपि सामान्य 4-5 में सबसे अधिक प्रचलित थी। ज़ासकर व्यावहारिक समुदाय द्वारा। कैथी लिपि का प्रयोग सबसे अधिक होता था। इसका मुख्य कारण यह था कि कैथी लिपि में लिखी गयी बातों का आभासी में बाधरी लगन नहीं पड़ पाती थी।

कैथी और इलाही सम्मान इन्दोसवी एवं बीसवीं शताब्दी में जब बहुत बड़ी संख्या में पंजाबी भाषी खानवाह, मीरवाह और अन्य देशों के प्रवास पर गए तो वे अपने साथ कैथी लिपि में लिखी गयी किताबें भी ले गए। ऐसे परिवारों की संख्या काफी है जो वर्तमान में विदेश में रह रहे हैं और उनके पूर्वज भारत के बाहर होने के बावजूद कैथी लिपि का प्रयोग करते थे। कैथी में लिखे हुए पुस्तकें भारतीय एवं अंग्रेजों के बीच ऐसी पुलबन्ध में सम्बन्धित हैं; जो वे अपने साथ बिदेस ले गए। ये पञ्चद्वलिपि हिन्दी में हैं परन्तु कैथी लिपि में लिखी गयी हैं। ज़्यादातर भारतीयों द्वारा कैथी लिपि का उपयोग किया गया कैथी के सम्बन्धित प्रश्नों का परिचायक है।

धार्मिक प्रकाशन, ईसाई मिशनरियु : वर्ष 1800-1858 ई०

प्रतिष्ठ लेखक श्री अंतुवान पाण्डेय ने लिखा है कि भारत में आए ईसाई मिशनरीयों का मुख्य उद्देश्य वर्ष प्रचार था। उन्हें यह ज्ञात था कि उत्तरी भारत में सबसे अधिक कैथी लिपि ही प्रचलित है। उनके समुदाय धार्मिक दस्तावेजों का ज्ञान जगत में प्रचार का अत्यन्त उपयोग कैथी लिपि में दस्तावेजों का मुद्रण आरंभ किया। सरकार द्वारा ज्वॉटी कैथी का मनकीकरण हुआ और कैथी में मेटल टाईप एवं मुद्रण विकसित किया गया। ईसाई मिशनरीयों द्वारा कैथी में मेटल फॉर मैक का लिए गए। कैथी लिपि में अनेक धार्मिक का मुद्रण किया गया। उत्तरी भारत में कैथी की लोकप्रियता एवं महत्ता के कारण ही ईसाई मिशनरीयों द्वारा धार्मिकी देशों के कई धर्मग्रन्थालयों में कैथी का प्रकाशन आरंभ किया गया। कैथी की सबसे प्रमुख छाप अमेरिका के सिकागो विश्वविद्यालय में विशेषकर तुलनात्मक धार्मिक अध्ययन विभाग में होना आरंभ हुआ बड़ा एसे शायी का हिन्दी का प्रकाशन देश का जो आतेवाले दिनों में मिशनरीयों के लिए कार्यकर्ता के। १ में अपना योगदान देना शुरू में। इन कार्यकर्ताओं को हिन्दी प्रकाशन हिन्दी के साहित्य एवं क्षेत्रीय स्वरूप वाक्य चिन्ता का शासन विषय हिन्दी रचना में सहायक अध्यापन और विशेषकर हिन्दी लिखने की रीति प्रशिक्षण - जगती एवं कैथी का प्रकाशन दिया जाता था।

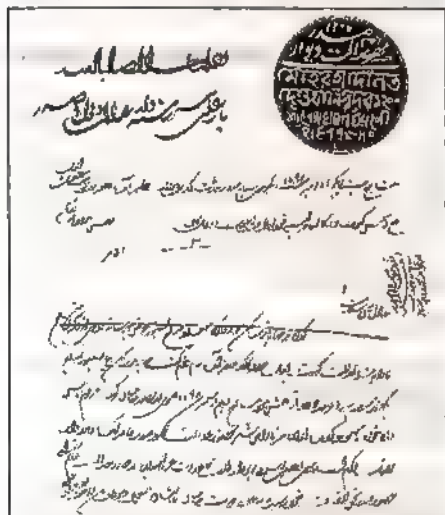
ब्रिटिश मिशनरी सोसाइटी के धार्मिक प्रतिवेदन में इस बात का उल्लेख रहता था कि ईसाई ईसावेय किन किन भाषा और लिपियों में प्रकाशित किए गए हैं। इस सूची में कैथी का स्थान सर्वोपरी या क्योंकि सबसे अधिक दस्तावेज कैथी लिपि में ही प्रकाशित होते थे लिखी जाने हिन्दी होती थी। कैथी में प्रकाशित विषय वर्तमान प्रमुख हैं।

(2) कलकत्ता अधिविविधनी कॉलेजिल सोसाइटी, 1852 - ६ फोर गोल्लेक्स विद् दी एक्स्टम ऑक दी अपोस्टेल्स। इसकी रचना की हिन्दी भाषा में हुई और यह कौंधी लिपि में है। इस किताब में पृष्ठों की संख्या 72। ई और इसके की प्रकाशक जे. थॉमस महाराज के

[illegible]

*“शु देवाय” का सीडी टाईटल (अन्तर्गत-आधुनिक सुनिश्चितता प्रोजेक्ट-1890) कोल-एफ

मुहर को लिए किया गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा राजकीय मुहर में कौंधी का उपयोग किए जाने मात्र से ही इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि राजकीय स्तर पर कौंधी लिपि की सर्वोच्च मान्यता थी। हालाँकि मुहर की लिपि को देखने से इसे देवनागरी लिपि की संज्ञा दी जा सकती है, परन्तु राजकीय स्तर पर वर्ष 1850 तक देवनागरी लिपि की दूर-दूर तक प्रचलना नहीं थी।



सुप्रीम प्रिविलेज कोर्ट अधीन, फलस्वरूप की मुहर (1850) मुहर को अपनी चाम फलस्वी (दो पक्षितार्थ) उसके बाद की दो पक्षितार्थ बाँटने और नीचे की दो पक्षितार्थ की नी में लिखी है-खोपी में मोहर अलास्ल सीधानी मुहर 1850 चर्चित है-कोपी-AP

कौंधी में सुफ़ी रचनाएं

सुफ़ी कवि मल्लिक मुहम्मद जावसी की रचनाओं का संग्रह 'जावसी ग्रंथावली' - (सम्पादक-

महात्मा-मुक्त काल प्रकाशक - हिन्दी एकेडमी, प्रयाग) में महाकवि जायसी कृत पद्मावत, अक्षयपट और आखिरी कलाप तथा इसके अतिरिक्त एक छोटी सी और रचना है जो अभी तक अप्रकाशित थी और जिसके नाम के अभाव में सम्पादक ने 'महरी बाइसी' दिया है। सम्पादक ने कॉमनवेल्थ रिलेशन ऑफिस अर्थात् इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी की सात इन्स्ट्रुक्शिव प्रतियाँ प्राप्त की हैं, जो कैथी, नागरी एवं फारसी लिपि में मुद्रित हैं। श्री चार्ल्स मेफियर ने अपने एक आलेख में जायसी ग्रंथालयी से संबंधित श्री चन्द्रालयी पाण्डेय को विचारों का संदर्भित करते हुए जायसी कं ग्रंथों की लिपियों पर प्रकाश डाला है। यह आलेख नागरी प्रचारणी परिषद् के अंक 4 सन् 2009, पृष्ठ-33। 34। में प्रकाशित हुआ है। इसके अनुसार जायसी ने इस्लामी सन् 927 हिजरी में 'पद्मावत' लिखा। यह प्रेमाख्यान का अत्यन्त पूर्ण ग्रंथ है। यह सम्पूर्ण ग्रंथ की मूल प्रति महाकवि जायसी ने कैथी लिपि में लिखी थी। श्री चन्द्रालयी पाण्डेय के अनुसार जायसी के समय में न तो व्यवस्थित उर्दू भाषा की उत्पत्ति हुई थी, और न भारत की भाषाओं को लिखने के लिए फारसी अक्षरों में आवश्यक विकास हुआ था। अर्थात्, जायसी ने उर्दू अक्षरों का प्रयोग नहीं किया क्योंकि उसे काल में ऐसे अक्षर विकसित नहीं थे। श्री चन्द्रालयी पाण्डेय आगे लिखते हैं कि जायसी का उद्देश्य हिन्दुओं में सूफी मत का प्रचार था, इसलिए उन्होंने अपने ग्रंथों को कैथी लिपि में ही लिखा, क्योंकि कैथी उस समय प्रायः सम्पूर्ण उत्तर भारत की जन लिपि थी। यह ज्ञातव्य है कि जायसी के ग्रंथों की मूल प्रति, जो उनके हाथ से लिखी गयी थी, यह अनुपलब्ध है। किन्तु आदि प्रतियों की अनुकृति का गयी हैं वह कैथी लिपि में है। 'पद्मावत' की तरह 'अक्षयपट' एवं 'आखिरी कलाप' की प्रतियाँ भी कैथी लिपि में हैं। जायसी ने 'आखिरी कलाप' में एक स्थान पर लिखा है

बी अवसर नोन नौ सरी ।

बीस बरस ऊपर कवि सरी ॥

अर्थात् नौवीं सदी हिजरी में उनका जन्म हुआ था। उन्होंने अपनी अन्तर्गत कृति 'पद्मावत' में सैरराज को शब्देकल बतलाया है -

सैरराज देहली मुल्तानू ।

चारिख खण्ड तपै पास मानू ॥

सैरराज का जन्म-काल 947 हिजरी से अग्रिम होता है। ज्ञातव्य है कि सैरराज ने कैथी लिपि को अपने राज काल की लिपि के रूप में प्रयुक्त किया था। बंगाल के कवि 'अल्लावल' ने कैथी लिपि में लिखी 'पद्मावत' की प्रति से ही इसका अनुवाद बंगाल में किया था। इन्होंने इस कैथी लिपि में लिखी प्रति को ही जायसी की हस्तलिखित प्रति के रूप में स्वीकार किया है ॥

सूफी कवि मुल्ता दावद : सद्गुरुका दाँ। रवेराचन्द्र वर्मा के अनुसार, प्रसिद्ध सूफी कवि मुल्ता दावद का जन्म क्रम-हगमरा, वर्तमान सुपौल जिला में हुआ था। इन्होंने लोकप्रिय शैरिक और उनकी प्रेयसी चन्द से संबंधित 'बाँदावन' महाकाव्य की रचना की है। शैरिक को राजधानी सुपौल से अठारह किमी. पूरब तरदी गढ़ में थी। इस ग्रंथ का सम्पादन महा प्रकाश

गुप्त ने किया है। मुस्ता राठर 'फारसी, उर्दू तथा कौची के विद्वान' थे। इनके विर लिखिकार थे नथन मल्लिक, जिनका उल्लेख इस महाकवि ने अपने ग्रंथ में किया है। नथन मल्लिक इनके बनिष्ठ मित्र थे। उन्होंने ही 'बंशधर' को सामान्य जगता में प्रचारार्थ कौची में अनुवाद किया था। वैसे इस महान कवि की विभ्र प्रति का सम्पादन श्री पाठशालाद भुष्ट ने किया - वह 'फारसी लिपि में थी किन्तु, कोसी के पड़से एक कौची लिपि में लिखित यह ग्रंथ कोसी क्षेत्र में अधिक प्रचलित था। नथन मल्लिक काव्य लिखिकार थे। विद्वान सम्पादक ने मुस्ता राठर का जन्म सम्वत् 1400 के आसपास ज्ञात है।¹⁾

सुनी कवि विद्याधरराजराज - पूर्णिया कृष्ण प्रसाद के 'दक्का' ग्रंथ में श्रीरानी विद्याधरराजराज का जन्म 1700 ई० के आसपास हुआ था। उन्होंने किसी गायक से सुनी कथा को आचार रूप कर 'विद्याधर' नामक प्रेम गायकका काव्य-संग्रह की रचना की थी।²⁾

बंशधर राका का जन्म विद्याधर बस्तर।

पौर सुना गायक मुख सेवी किया विचार H

विद्याधरराजराज बहुत इस रचना की कलसी प्रति कौची में है, जिसका उर्दू में प्रथम प्रकाशन 1938 ई० में जहाँगीर प्रेस, दिल्लीगंज से हुआ था। इसका सम्पादन मकबूल हुसैन मकौसी ने किया था। विद्याधर सुफी परम्परा का ग्रंथ है। पूर्णिया जिला हिन्दी साहित्य सम्मेलन के यंत्री रका कपरमल साहित्यराल ने बहुत पहले मूल कौची से दम्पतरी में इसका सिधन्तराल किया था। इस प्रेमकाव्य का रचनाकाल 1336 साल अथवा 1728 ई० है।³⁾

संदर्भ संकेत :

- 1) से 7 - प्रोफेसर टू इनकोड टी कौची रिकट - अंशुमान पांडेय, पृष्ठ - 18-22
- 2) आधुनिक हिन्दी के विकास में साहित्यिक प्रेम की भूमिका, डॉ० श्रीरामचन्द्र सिंह, विश्व साधना परिषद्, पटना, पृष्ठ 48-50
- 3) प्रोफेसर टू इनकोड टी कौची रिकट - अंशुमान पांडेय, पृष्ठ - 77
- 4) 14, अंग लिपि का इतिहास - डॉ० हरिप्रकाश श्रीवास्तव 'कलाप', पृष्ठ 60-62

कैथी के विभिन्न रूप

लेखक अशुभम पांडेय ने लिखा है कि कैथी नामक राज की उत्पत्ति संस्कृत राज कावस्य से हुआ है जिसका उत्पत्ति उत्तर भारत में लेखन कार्य करनेवाली जाति का बोध होता है। सामान्य लेखन की भाषा में कैथी का अर्थ होता है - काव्याभ्य जाति द्वारा लिखी जानेवाली लिपि। इसलिए कैथी लिपि को कैथीनागरी भी कहा जाता है। कैथीनागरी को सपुस्तक देकर सामान्य लेखन की भाषा में कैथी का नाम दिया गया जिसे सरकारी अधिकार सरकार द्वारा एकाकीय लिपि के रूप से अंगीकृत किया गया और रोमन लिपि में इसे स्वीकृत किया गया। अंग्रेज द्वारा तैयार किए जानेवाले शासकीय पत्रों में इसे कैथी का नाम दिया गया।

परिभाषा - कैथी को तीन रूपों में परिभाषित किया जा सकता है -

- (क) ऐतिहासिक लिपि जिसका उपयोग बिहार एवं उत्तरी भारत के जन समुदाय द्वारा किया जाता था;
- (ख) उत्तरी भारत में व्यवहार किए जानेवाले लिपि कुल का एक सदस्य
- (ग) लिखने की एक विधि

लिखने की विधि - महानदी सेरी लंछ एवं कैथी लिपि सगल विधि से लिखी जाती है - पिन-पिन भौगोलिक क्षेत्र में इन अक्षरों को अलग-अलग नाम से सम्बोधित किया जाता है - महाराष्ट्र में इस सेरी राजस्थान में सगलने और पंजाब में इसे लंछा के नाम से जाना जाता है। नैस कि नाम से विदित है. इन क्षेत्रों में इसे सामान्य दैनिक कार्यों के लिए एवं

हीन प्रति से निपटने की विधि में रूप में कार्य आता है। इस विधि द्वारा निपटने से निपटने में शुद्धता एवं विनाश का प्रभाव होता है। जिस प्रकार डीपी का कार्य संलग्न निपटारा होता है उसी प्रकार प्रभावों का कार्य कार्यात्मिक या व्यवहारिक (प्रैक्टिकल) का कार्य संलग्न प्रभाव होता है। डीपी का कार्य प्रभावों के संबंधित कार्यों में प्रभाव एवं प्रभाव (प्रभाव) से संबंधित कार्यों निपटने की विधि में रूप में ही कार्यात्मिक प्रभाव होता है।

लेखित यह पूर्णतः सही नहीं है। कौची का प्रसार उत्तर प्रदेश के अधिकांश जिलों तक हुआ। बिहारी के सीमावर्ती जिलों के अतिरिक्त मध्यप्रदेश के कुछ जिलों में कौची के उपयोग होने के प्रमाण मिले हैं। आतः यह कहना कि कौची सिर्फ बिहार राज्य की लिपि थी इसके प्रसार के अध्ययन को छोटा करना ही है।

शब्द	लिपि	शब्द	लिपि	शब्द	लिपि	शब्द	लिपि
क	क	ख	ख	ग	ग	घ	घ
च	च	छ	छ	ज	ज	झ	झ
ट	ट	ठ	ठ	ड	ड	ढ	ढ
ण	ण	त	त	थ	थ	द	द
ध	ध	न	न	प	प	फ	फ
ब	ब	भ	भ	म	म	य	य
र	र	ल	ल	व	व	श	श
स	स	ह	ह	ष	ष	ष	ष
ळ	ळ	ळ	ळ	ञ	ञ	ञ	ञ
ए	ए	ऐ	ऐ	इ	इ	उ	उ
ऊ	ऊ	ऋ	ऋ	ॠ	ॠ	ऌ	ऌ
ॡ	ॡ	ॢ	ॢ	ॣ	ॣ	।	।
॥	॥	०	०	१	१	२	२
३	३	४	४	५	५	६	६
७	७	८	८	९	९	१०	१०
११	११	१२	१२	१३	१३	१४	१४
१५	१५	१६	१६	१७	१७	१८	१८
१९	१९	२०	२०	२१	२१	२२	२२
२३	२३	२४	२४	२५	२५	२६	२६
२७	२७	२८	२८	२९	२९	३०	३०
३१	३१	३२	३२	३३	३३	३४	३४
३५	३५	३६	३६	३७	३७	३८	३८
३९	३९	४०	४०	४१	४१	४२	४२
४३	४३	४४	४४	४५	४५	४६	४६
४७	४७	४८	४८	४९	४९	५०	५०
५१	५१	५२	५२	५३	५३	५४	५४
५५	५५	५६	५६	५७	५७	५८	५८
५९	५९	६०	६०	६१	६१	६२	६२
६३	६३	६४	६४	६५	६५	६६	६६
६७	६७	६८	६८	६९	६९	७०	७०
७१	७१	७२	७२	७३	७३	७४	७४
७५	७५	७६	७६	७७	७७	७८	७८
७९	७९	८०	८०	८१	८१	८२	८२
८३	८३	८४	८४	८५	८५	८६	८६
८७	८७	८८	८८	८९	८९	९०	९०
९१	९१	९२	९२	९३	९३	९४	९४
९५	९५	९६	९६	९७	९७	९८	९८
९९	९९	१००	१००	१०१	१०१	१०२	१०२

कौची की तीन शैलीय व्यवस्था लिपिगण (वैदिकी) मन्त्री और मोचपुरी का सुलभतम अध्ययन
(भूत मोल-विमर्श) लोक-अनुसंधान विभाग

अवधी - अवधी भाषा के लिए कौची लिपि का सामान्य रूप से उपयोग किया जाता था। विमर्श सभा के भाषा सर्वेक्षण (1904) के अनुसार अवधी भाषा का प्रयोग उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश, बिहार एवं नेपाल के कुछ हिस्सों में किया जाता था। होर्नले (1880) ने लिखा है कि अवधी भाषा कौची एवं देवनागरी, दोनों लिपियों में लिखी जाती थी परन्तु बीसवीं सताब्दी आठे-आठे देवनागरी लिपि कौची के स्वरूप को अवधी भाषा लिखने के संदर्भ में खोले छोड़ दिया और इसके बाद अवधी, देवनागरी में ही लिखी जाने लगी। देवनागरी लिपि में ही अवधी

[illegible]

इ.स.वि. १८४४ ई. में ब्रिटीश सरकार द्वारा बंगाल में प्रथम बार प्रत्यक्ष प्रशासन की व्यवस्था की गई।

बोजपुरी - हिमालय के धाक सर्वप्रथम में वसित है कि बोजपुरी भाषा का जनकत्व सिद्धि केही हो भ। शिगेल (1988) के अनुसार उत्तर प्रदेश और नेपाल में बोजपुरी बोसनेकरल की अच्छी खासी वादा है। इसके अतिरिक्त दक्षिणी एशिया के श्रीलंका, गुजरात, त्रिनिदाद, दक्षिणी अफ्रीका के सुरीनाम एवं फिजी जैसे राष्टों में बोजपुरी बोसनेकरल की जनसंख्या काफी है। बोजपुरी भाषा के लिए अब केही के स्थान पर ऐजनारी का ही प्रयोग होत है। श्री एम.कर्म (2003) लिखते हैं कि बोजपुरी भाषा के लिए अभी की केही लिपि का उपयोग

करते थे। कौन्सी एक प्रकार से धर्मनिरपेक्ष लिपि को रूप में थी और इसका उपयोग भगवत के हर शक्ति एवं धर्म के लोग करते थे। कौन्सी का सम्बन्ध देवनागरी से भिन्न था। देवनागरी का उपयोग साहित्यिक एवं इससे संबंधित कार्यों के लिए होता था जबकि कौन्सी का उपयोग सामान्य जन द्वारा किया जाता था।

भारत में कौन्सी का उपयोग एवं इस लिपि की विशेषता को देखते हुए विद्वान इस लिपि को इंडो-आर्यन लिपि से संबंधित करते हैं। इसी आर्यन लिपि समूह के अन्य लिपियों में ब्राह्मी, विहितरी एवं उद्दिष्ट का भी उल्लेख किया गया है। उद्दिष्ट विद्वान सुदीर्घ धुकार चटर्जी के अनुसार इस समूह के लिपियों की उत्पत्ति मुख्यतः आर्यन शोध अथवा चर्चा के वैदिक सत्रों से हुई। उन्होंने आगे कहा कि सातवीं सताब्दी में गुप्त लिपि अथवा आर्यन देवनागरी/विहितरी उपयोग मुख्य रूप से दार्जिली एवं धर्मिचर्चा सत्रों में होता था, जहाँ अज्ञान्य एक चर्चा और यही कौन्सी लिपि जगज्जगत् में आकर बस सी गयी। लिखने एवं पढ़ने में कौन्सी लिपि काफी आसान थी और इसी कारण इसका विकास उपयोग होता जाता गया। कौन्सी लिपि कोचुपुटी, गगदी क्षेत्र के अतिरिक्त मैथिली जहाँ क्षेत्र एक था चर्चा थी। इस समय विहितरी क्षेत्र में ब्राह्मण एवं अन्य उच्च वर्गीय जटिलों में वैहितरी लिपि (विद्वान) का प्रचलन था। सामान्य जन द्वारा कौन्सी लिपि का ही उपयोग किया जाता था।

कौन्सी लिपि का उपयोग समान में किस समय से होता आरंभ हुआ, इससे बारे में मतभेद है। उपर्युक्त प्रमाण के अनुसार सोलहवीं सताब्दी में कौन्सी लिपि को रूप में एवं समान में सबसे प्रचलित लिपि के रूप में उद्भव में उद्घाटित हो गयी थी। इसी अवधि में सर राज सुटी (1486-1545) को हुए उद्भव के संभवतः से, के सत्राधीन लिपि के रूप में कौन्सी को प्रमाणित किया गया था। इसी अवधि में कौन्सी का उपयोग साहित्यिक कार्यों में होता आरंभ हो गया था। इसके बाद कौन्सी लिपियों के उपयोग की लिपि होकर नहीं रह गयी थी, बल्कि जन द्वारा इसका उपयोग होता आरंभ हो गया। द्वादशवीं सताब्दी में कौन्सी को अनेक प्रकार द्वारा सत्राधीन लिपि के रूप में प्रमाणित हो गयी और यह विद्वान एवं चर्चा/उद्भव से उद्भव थी। उद्भव के सत्राधीन लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया गया। साथ ही, इसी अवधि में कौन्सी लिपि में उद्भव की धुन अथवा के लिए धनु के प्रति का भी विकास किया गया।

कौन्सी की विशेषताएँ

देवनागरी लिपि की उत्पत्ति ब्राह्मी से चली आती है, किन्तु कौन्सी की उत्पत्ति के संबंध में

विज्ञान एकमूल नहीं है। इतना सच है कि कभी न तो देवनागरी से विकसित लिपि है और न ही देवनागरी को ब्रह्मदेव से, बल्कि कि कुछ लोग मानते हैं।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०

Figure 1

1. 1st 2nd 3rd 4th 5th 6th 7th 8th 9th 10th 11th 12th 13th 14th 15th 16th 17th 18th 19th 20th

1st 2nd 3rd 4th 5th 6th 7th 8th 9th 10th 11th 12th 13th 14th 15th 16th 17th 18th 19th 20th

The shades of writing you suffer in different shades

Weight

1st 2nd 3rd 4th 5th 6th 7th 8th 9th 10th 11th 12th 13th 14th 15th 16th 17th 18th 19th 20th

1st 2nd 3rd 4th 5th 6th 7th 8th 9th 10th 11th 12th 13th 14th 15th 16th 17th 18th 19th 20th

Figure 2

Figure 3

1st 2nd 3rd 4th 5th 6th 7th 8th 9th 10th 11th 12th 13th 14th 15th 16th 17th 18th 19th 20th

1st 2nd 3rd 4th 5th 6th 7th 8th 9th 10th 11th 12th 13th 14th 15th 16th 17th 18th 19th 20th

Figure 4

कभी में अंक, गुण, वस्तु और क्षेत्रगत लिखने के लिए विश्व-मूल जोत विज्ञान (1899)

पत्र-४८) द्वितीय जोत-अनुमान बांटे-लेखकाल हू इन्फोर्मेट कभी विज्ञान पुनः-३

देवनागरी और कभी दोनों ही लिपियां बाहमी से स्वतंत्र रूप से विकसित हुईं। पंडित गीतेश्वर हीरानन्द ओझा के अनुसार देवनागरी नवीं शताब्दी के अंत अथवा दशमी शताब्दी के आरंभ में विकसित हुई (प्राचीन भारतीय लिपिभारता पृष्ठ - 42)

कभी किताब 'द ऑरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ बंगाली लिपि' में प्रसिद्ध लेखक श्री डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी ने उल्टी भारत की पश्चिमी लिपि को 'अदि भागरी' माना है। वे मुख्यतः प्रबन्धन तथा सम्प्रदाय में इसका क्षेत्र दर्शाते हैं। डॉ० डेविड किरिंगर पूर्वी मुख लिपि की पश्चिमी उपशाखा से सिद्धभावका लिपि और उसी से नागरी का विकास प्रकट 80 . कभी लिपि का इतिहास

है। उनके अनुसार 7वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ। वर्ष 1991 में प्रकाशित 'भारतसुख' विश्वविद्यालय की पत्रिका 'संध्या' में प्रोफेसर डॉ० निरंजन प्रसाद वर्मा ने उल्लेख किया है कि 10वीं और 11वीं शताब्दी को भारत अपने ऐतिहासिक अवस्था में नहीं आया किन्तु विकसित अवस्था में थी।

विषय	संख्या	संख्या	संख्या	संख्या	संख्या	संख्या	संख्या
1. 10वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ।	2. 11वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ।	3. 12वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ।	4. 13वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ।	5. 14वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ।	6. 15वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ।	7. 16वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ।	8. 17वीं शताब्दी में भारत का विकास हुआ।

विषय, संख्या और वर्षों में प्रत्येक वर्ष की संख्या-संख्या-संख्या-संख्या-संख्या-संख्या-संख्या-संख्या

की भी लोकप्रियता देखागयी से अधिक थी इस ग्रन्थ को कई विद्वानों ने अपने-अपने क्षेत्र से देखभाल किया है। डॉ० निरंजन प्रसाद वर्मा 14वीं से 17वीं शताब्दी के ग्रन्थ मिलने कीकदों इस्तिलाखित ग्रन्थियों के अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि स्पष्ट: इस

सू-पाग की जगह से आम व्यवहार की और साहित्यिक/धार्मिक रचनाओं की लिपि मुद्रण; कैंची की और इसके बाद देवनागरी का स्थान आता है।

डा. हरिनाथ श्रीवास्तव 'संस्कृत' में अपनी पुस्तक 'अंग लिपि का इतिहास' में कैंची लिपि की निम्न सामान्य विशेषताओं का वर्णन किया है :

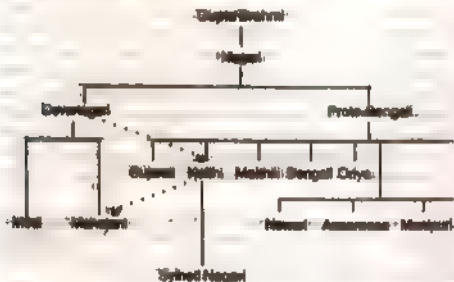
1. कैंची बहुत प्रचुर मात्रा में लिपि है। -
2. कैंची और अंगो एक ही लिपि है, नाम में अंतर है।
3. कैंची और देवनागरी लिपि का सम्बन्धित विकास हुआ।
4. उत्तर-पश्चिम में देवनागरी सहाय्य की लिपि हुई और कैंची आम व्यवहार की।
5. उत्तर पश्चिम युग में कैंची समस्त उत्तर भारत की राष्ट्रीय लिपि थी।
6. कैंची कोकपुरी की अन्य लिपि भी है।
7. कैंची में शिरोच्छा नहीं होती।
8. कैंची में मूल स्वर चार हैं - अ, इ, उ, ए।
9. कैंची में दो दीर्घ स्वर हैं - आ और ऐ।
10. कैंची में संयुक्त स्वर दो हैं - ओ, औ।
11. कैंची में झू का प्रयोग नहीं होता।
12. कैंची में ङ, ञ, ण, स लकार नहीं होते हैं।
13. कैंची वर्णमाला में 'व' नहीं है। 'व' और 'वः' का काम य-वे करता है।
14. छ, च का काम क से करता है।
15. ष, स का काम श से करता है।
16. कुछ को छोड़ कैंची के अक्षर बिना कालम इन्द्र लिखे जा सकते हैं।
17. लिखने की लक्ष्य और सुविधा कैंची की अपनी निजी विशेषता है।

कैंची में स्वर मात्राएँ

कैंची लिपि की प्रमुख विशेषता में स्वरों की मात्राएँ हैं। देवनागरी या अन्य लिपि की तुलना में स्वरों की कम मात्राएँ कैंची में हैं। ऐक्य कथें हुआ यह तो अभी भी शोध का विषय है। विद्वानों का मानना है कि चूंकि यह वज्रलिपि थी इन्द्रलिपि थी, इन्द्रिय त्वरा (क्षीप्रता) की सुविधा से इन्हें मात्राओं की संख्या कम रखी गयी। पहले इसमें प्रिंटिंग की सुविधा नहीं थी। हालाँकि बाद के वर्षों में जब कैंची में प्रिंटिंग की सुविधा विकसित हुई तो धीरे-धीरे स्वरों की मात्राएँ भी बढ़ीं। यही कारण है कि कैंची के स्वकर्णों के अध्ययन में हम शनैः-शनैः परिवर्तन भी पाते हैं। मैथिली के प्रसिद्ध विद्वान रजिठ मोहिनन्द झा ने इस पर प्रकाश डालते हुए बताया कि किसी भी लिपि में इस लिखों, उच्चारण में अन्तर बहुत कम ही शब्दों पर पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि हम उच्चारण चाहें इसमें करें या दीर्घ, अथ तो गही रहस्य है—साधारण जनलिपि के रूप में प्रसिद्ध लिपियों में स्वर मात्राओं, अक्षरकों का अपाय विकसित है और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता भी होती है। सामान्य जन अपनी व्यवसाय को व्यवस्थित करने का आसक्ति रखता रहता है और भाषा विज्ञान के क्षेत्रों से दूर, भीषण और पर अपनी बात रखता है।

अन्य लिपियों को लेकर की गई बातें

जिस प्रकार देवनागरी, गुजराती, ब्रह्म लिपियों का संबंध एक दूसरे से है, वही प्रकार कीची का संबंध भी अन्य लिपियों से है। यहाँ भी यहाँ का मत यह कि उत्तर भारत में प्रचलित ब्रह्म लिपियों से ही वे सभी लिपियाँ उत्पन्न हुईं और कीची का उत्पन्न स्वतः ही ब्रह्म से ही है। कीची मुख्य रूप से देवनागरी और गुजराती, इन दो लिपियों के बहुत ही सफल मेली हुई है। परन्तु इन दोनों लिपियों से कीची में कुछ अन्तर भी पाए हैं। यह लिखने का कोई ऐसा आकार देवनागरी नहीं है जिस कीची का उत्पन्न गुजराती से हुआ सम्भव नहीं? मैथिली के प्रसिद्ध 'भिक्षु' 'ओम्कार' आदि के कारण कि पहले मुख्यतः और मध्यभारत में जो लिपियाँ प्रचलित थीं, वे ज्यादातर वर्ण के कारण थे। इसी यही और इन लिपियों के यहाँ के लोगों के बीच गहरी कीची भावना की लिपि या लिपि की मेली लिपि का प्रयोग होता था। मराठी और कीची का मतः एक ही लिपि है। कीची-कीची में बहुत अन्तर आता। ब्रह्म गुजराती लिपि इन दोनों लिपियों को मिलाती है।



कीची गुजराती लिपियों का कीची के ब्रह्म से

हिंदु जनविद्वानों ने बहुत उत्साह के साथ की लिपियों को जो गुजराती से ही उत्पन्न है। कीची, ब्रह्म लिपि और गुजराती, इनका मत यह है कि इन तीनों लिपियों में सबसे अधिक प्रचलित कीची ही थी क्योंकि कीची या इसके ब्रह्म से पहले हुए ब्रह्म का प्रयोग प्रचलित भारत, मराठी और गुजराती क्षेत्र में होता था। यहाँ तक कि इसके प्रयोग के बिना उत्तरी भारत के लोगों में भी मिले हैं। ब्रह्म लिपि का प्रयोग उत्तरी भारत में मिली लिपि है, के साथ कीची से ही निकली है। इसके अधिकार मराठी या देवनागरी और मराठी, और कीची, ही होते हैं। ब्रह्म का मत है कि कीची का प्रयोग रूप से मराठी है और मराठी को ब्रह्म कीची का एक-एक प्रकार का ब्रह्म लिपि लिखना है।

●●● एवं सुखदं

बौद्धों को सिद्धि का एक वर्ग का समूह माना गया है। हालाँकि उनका ध्यान में प्रतीति-बौद्ध सिद्धियों का उद्गम स्थल बौद्धों को माना गया है किन्तु मुसलमानी सिद्धि के विकास में बौद्धों का सबसे अधिक योगदान माना गया है। इससे पहले जैनों का योगदान है कि मुसलमानी सिद्धि का विकास बौद्ध सिद्धि पर ही आधारित था। इसी आधार पर विचार्यते में आता था कि सर्वप्रथम में स्पष्ट तौर पर लिखा है कि बौद्धों का प्रयोग उनका नाम में मुसलमानी के समूह का के लेकर बौद्धों को के छद्मार्थों इत्यादि एक प्रयोग था। बौद्धों और मुसलमानी में सबसे बड़ी समझौता है कि दोनों सिद्धियों में विशेषता नहीं होती। विचार्यते में भी लिखा है कि मुसलमानी में जिस सिद्धि का प्रयोग किया जाता है वह बौद्धों की है। बौद्धों और मुसलमानी के सम्बन्ध में स्पष्ट ही सिद्धि का योगदान इन दोनों में होता है। जैनों का योगदान जैनों को विचार्यते 'सर्व जैनों ए चतुर्वेद एव' में लिखा गया और हालाँकि सिद्धि मुसलमानी अथवा बौद्धों में किया गया, वह बौद्धों में लिखा है। हालाँकि उन समान बौद्धों का प्रयोग नहीं कर 'सिद्धि' का नाम प्रयोग किया गया, किन्तु विचार्यते का नाम है कि वह सिद्धि बौद्धों की ही है।

[illegible]

की, गुजराती, केरली और मराठी भाषी वर्गों का प्रभाव इस भाषा पर,
 पृष्ठ संख्या-४४-४४

स्वतंत्र स्वर

IAVTH	GUJARATI	DEVNAGARI	BRJTH
० अ	અ	अ	-
० आ	આ	आ	ઞ
१ इ	ઇ	इ	इ
१ ई	ઈ	ई	-
२ उ	ઉ	उ	उ
२ ए	એ	ए	-
३ ऋ	ઋ	ऋ	-
० ए	એ	ए	ऐ
० ऐ	એ	ऐ	ई
० ओ	ઓ	ओ	ऋ
० औ	ઔ	औ	-

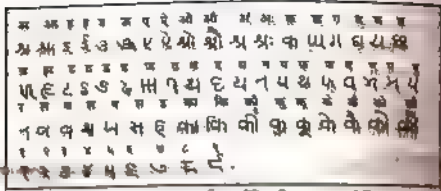
अक्षित स्वर

IAVTH	GUJARATI	DEVNAGARI	BRJTH
-	-	-	-
० ऌ	ઌ	ऌ	ऌ
१ ऒ	ઐ	ऐ	ऐ
२ ऋ	ઋ	ऋ	-
३ ॠ	ૠ	ॠ	-
४ ॡ	ળ	ॡ	-
५ ॢ	઴	ॢ	-
६ ॣ	વ	ॣ	-
७ ।	શ	।	-
८ ॥	઼	॥	-
९ ०	ા	०	-
१० १	િ	१	-

IAVTH	GUJARATI	DEVNAGARI	BRJTH
१ ०	૦	०	०
१ १	૧	१	१
२ २	૨	२	२
३ ३	૩	३	३
४ ४	૪	४	४
५ ५	૫	५	५
६ ६	૬	६	६
७ ७	૭	७	७
८ ८	૮	८	८
९ ९	૯	९	९

कैथी, गुजराती, देवनागरी और लिपिहीन पाठों के अनुक्रमिक अध्ययन करने के लिए, अक्षर-अनुक्रम-१५-४३

गिबर्सन ने १९०३ में लिखा कि गुजराती लिपि का मुख्य आधार कैथी ही है और कैथी लिपि को ही आधार बनाकर उत्तरी भारत की अन्य लिपियाँ विकसित हुईं। लेकिन गिबर्सन ने ही वर्ष १९९९ में इस बात की चर्चा भी की कि गुजराती लिपि का अपनी भाषा में महात्माजी लिपि कहा जाता है जिसकी चर्चा यनिमा या सराफ़ी लिपि के रूप में भी की जाती है। गिबर्सन ने अपने लिखा कि मोदी, गुजराती, तारद, लंडा और कैथी के अक्षरों में समानता है और इसी आधार पर यह कहा जा सकता है कि वस्तुतः सभी लिपियाँ कैथी से ही निकली हैं। हमने



मुसलमानी लिपि



कैथी, मुसलमानी और देवनागरी का तुलनात्मक अध्ययन और प्रयोग

स्वर्ण प्रियंवास ने एक अलग तथ्य को व्यक्त किया है। उन्होंने कैथी को लिखने के रूप में परिभाषित नहीं कर, एक विशेष वर्ग द्वारा प्रयोग की जायेगी लिपि के रूप में ही परिभाषित किया है। उन्होंने बिहार में प्रचलित और मुसलमानों में प्रचलित कैथी में प्रत्यक्ष की तुलना की। जब वे कहते हुए लिखते हैं कि एक परिवार नहीं एक कि एक व्यक्ति द्वारा लिखा गया है। अंग्रेज विद्वान डेविड प्रिंसीप माइकल ने लिखी कैथी और मुसलमानी कैथी में भिन्न अन्तर को दर्शाया है। उन्होंने कहा कि कैथी के बिहारी स्वरूप और मुसलमानी

स्वरूप के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि गुजराती कैथी अधिक विकसित है।

संख्या	गुजराती	कैथी	संख्या	कैथी	संख्या	गुजराती	हिन संख्या
७	१	१	१	१	८	१	१
७	२	२	२	२	९	२	२
७	३	३	३	३	१०	३	३
४	४	४	४	४	४	४	४
५	५	५	५	५	५	५	५
६	६	६	६	६	६	६	६
७	७	७	७	७	७	७	७
८	८	८	८	८	८	८	८
९	९	९	९	९	९	९	९
१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०

कैथी एवं अन्य लिपियों का तुलनात्मक वर्गीकरण, प्रोफ. जगदीश चंद

पानु गिर्मान इन मूलों से पुनः छोड़ा अलग पत्र का उपलेख करते हैं। उन्होंने गुजराती कैथी में लिखित दस्तावेजों का विचार के कैथी खानेखाने परकरी (विपुलित परकरी) को पढ़ने के लिए दिया और उन्होंने गुजराती कैथी लगभग समान तरीके से पढ़ दिया। गिर्मान ने उपलब्ध किया कि विपुलित परकरी को गुजराती कैथी को पढ़ने में जो छोटी-बहुत कठिनाई हुई, वह भीषणिक संज्ञ में अन्तर में व्यक्ति विशेष के लिखने की विधि में अन्तर के कारण ही हुआ, अन्यथा विपुलित कैथी और गुजराती कैथी में बहुत अधिक समानता है। उन्होंने फोटो के अध्ययन से इस बात को स्पष्ट किया कि गुजराती, कैथी और गुरुमुखी का एक

की फॉन्ट है, योही बहुत असम्भव है। अतः भारत के बहुत बड़े यू-यूएन में ब्रैली को सम्पूर्णता से देखते हुए ब्रैली फॉन्ट के विकास का निर्णय तकनीकी सरकार द्वारा लिया गया और सम्पूर्ण ठीकी लक्ष्य में मुक्तता फॉन्ट का भी विकास हुआ।

	A	B	C	D	E
KA	क	ख	ग	घ	ङ
KHA	ख	ख	ख	ख	ख
GA	ग	ग	ग	ग	ग
GHA	ग	ग	ग	ग	ग
MGA	—	—	—	—	—
CA	च	च	च	च	च
CHA	च	च	च	च	च
JA	ज	ज	ज	ज	ज
JHA	ज	ज	ज	ज	ज
MJA	—	—	—	—	—
YA	य	य	य	य	य
TYA	य	य	य	य	य
DA	ड	ड	ड	ड	ड
DHA	ड	ड	ड	ड	ड
MHA	—	—	—	—	—
NA	न	न	न	न	न
TA	त	त	त	त	त

	A	B	C	D	E
THA	थ	थ	थ	थ	थ
DA	ड	ड	ड	ड	ड
DHA	ड	ड	ड	ड	ड
NA	न	न	न	न	न
PA	प	प	प	प	प
PHA	प	प	प	प	प
BA	ब	ब	ब	ब	ब
BHA	ब	ब	ब	ब	ब
MA	म	म	म	म	म
VA	व	व	व	व	व
RA	र	र	र	र	र
LA	ल	ल	ल	ल	ल
GA	ग	ग	ग	ग	ग
GHA	ग	ग	ग	ग	ग
SEA	—	—	—	—	—
SA	स	स	स	स	स
HA	ह	ह	ह	ह	ह

निम्नलिखित ताली में अक्षर हटिका में निम्नलिखित द्वारा सम्पूर्ण निम्न ताली में ब्रैली के अक्षर (A & B) का निम्न निम्न ताली में सम्पूर्ण निम्न ताली में ब्रैली के अक्षर (C & D) अक्षरों के द्वारा निम्नलिखित ताली में ताली में निम्नलिखित ताली में ब्रैली के अक्षर (E) अक्षरों अक्षरों—

ब्रैली और देवनागरी

कई विद्वानों ने ब्रैली और देवनागरी के परस्परिक संबंधों का अध्ययन किया है और सम्भव पर यही है कि देवनागरी की हस्तलिखित ब्रैली है और देवनागरी लिपि को ब्रैली लिखने को लिए ब्रैली लिखने के लिए, अतः सम्भव को निम्न ताली में लिपि विकसित हुई यही

कधी कहालगी । इसलिए इसे देवनागरी का जन्म स्वरूप, परिवर्तित रूप या घसीटा सौरो भी कहा जाता है । लेकिन ऐसे अध्ययनों का वैज्ञानिक स्वरूप नहीं है । उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि देवनागरी से कधी निकली और इसी में इसका स्वरूप विकसित हुआ । यद्यपि लिपि के अध्ययनकारोंओं का एक वर्ग यह मानने के लिए तैयार नहीं है कि देवनागरी के सम्बन्धन इसका विकास हुआ खीक उनका मत है कि कधी का विकास देवनागरी से आलाग हुआ । इस प्रकार से देवनागरी से निकली लिपि कधी-ई इसे मानने के लिए तैयार नहीं है । इन विद्वानों में सबसे प्रमुख प्रिचर्सन का नाम आता है किन्होंने कधी पर विशेष रूप से कार्य किया । इनका कहना है कि कधी विकास देवनागरी से सीधे तौर पर नहीं हुआ । इसका स्पष्ट मत है कि जहाँ तक देवनागरी और कधी के अक्षरों में समानता का प्रश्न है तो वेही सम्बन्ध अन्य लिपियों में भी पाई गयी है और इस लुभार से कहना ठीक नहीं है कि देवनागरी से ही कधी को उत्पत्ति हुई । प्रिचर्सन का मत है कि पहले ब्रह्म से देवनागरी को उत्पत्ति भी हुई और कधीनागरी को भी ।

Devanagari	Kayasthi	Mahajani	English	Devanagari	Kayasthi	Mahajani	English	Devanagari	Kayasthi	Mahajani	English
अ	अ	अ	a	आ	आ	आ	A	इ	इ	इ	i
ई	ई	ई	ee	उ	उ	उ	u	ऊ	ऊ	ऊ	oo
ए	ए	ए	e	ऐ	ऐ	ऐ	ai	ओ	ओ	ओ	o
अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara	अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara	अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara

अक्षरों का संक्षेप

Devanagari	Kayasthi	Mahajani	English	Devanagari	Kayasthi	Mahajani	English
अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara	अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara
अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara	अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara
अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara	अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara
अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara	अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara
अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara	अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara
अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara	अक्षर	अक्षर	अक्षर	akshara

कधी, देवनागरी और महजनी का तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. अमृतम कर्

जिस प्रकार अंग्रेजी के इस्तेमालित स्वरण और प्रिंटिंग स्वरण में अंतर था, वही है, समान वही स्थिति बंकी की है। प्रिंटिंग का मत है कि बंकी और देवनागरी में मुख्य अंतर लिखने की विधि की रही है। सुलोच के रूप में देवनागरी का उपयोग होता था और 'कॉरिप' स्वरण में बंकी का उपयोग होता था। लेकिन दोनों में अंतर ही अंतर नहीं है। ऐसा लगाने वाले, दोनों लिपियों को ठीक से नहीं समझते। दोनों के इस्तेमालित स्वरण और प्रिंटिंग स्वरण में अंतर है। इन अंतरों को लिपियों के उपयोग क्षेत्र के मतभेद से भी समझ लिया जा सकता है। एक ओर जहाँ देवनागरी का उपयोग संस्कृत और हिन्दी के लिए किया गया वहीं बंकी का उपयोग भोजपुरी, मगही और मैथिली क्षेत्रों में बहुतबहुत हो किया गया। इसका अर्थ हुआ कि आम जनता, खासकर ग्रामीण जनता में बंकी का उपयोग हुआ। देवनागरी का उपयोग संस्कृत भाषा के लिए इसलिए किया गया क्योंकि इसके पूर्ण स्वरण थे। बंकी का काफी भी पूर्ण स्वरण नहीं था और इसलिए यह विकसित भाषा के लिए अनुकूल नहीं समझी गयी।

I II I II

अंग्रेज़ अनुसंधान केंद्र, अंगुल-20

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥
 ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

बंकी के 'दंडा' और देवनागरी के दंडा में अंतर अंगुल-20

पुनो को को को १ १५५५ २५५ ५५ के के ५५ ५५ के के
 ५५५ १ ५५ ५५ के के पुनो को को ५५५ ५५

बंकी के 'दंडा' और देवनागरी के दंडा में अंतर अंगुल-20

ਦੀਵੀ ਭਾਈ ਸਿਲੋਈ ਸਾਹਿਬ

नेस सॉफ्ट सिस्टमस नामक विज्ञान द्वारा सिल्वेटी नगरी पर विशेष अध्ययन किया गया। उन्होंने सिखा है कि सिल्वेटी नगरी भी कैंथी का ही एक रूप है। उन्होंने आगे सिखा है कि जहाँ गुबर्णा को बँधी सफ़ूह की लिपि हो जानी गयी है वहाँ पूर्वी क्षेत्र में कैंथी सिल्वेटी स्वरूप में थी। इनके अनुसार सिल्वेटी नगरी सबसे अधिक जगहों कैंथी से मिलता जुलता है।

[illegible]

संक्षेपः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	२
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	३
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	४
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	५
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	६

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	७
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	८
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	९
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१०
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	११
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१२

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१३
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१४
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१५
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१६
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१७
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॐ नमो भगवते वासुदेवाय	१८

सर्वेभ्यो नमः

प्रमाणित है इनकोड द कीमी रिपोर्ट, अनुमान पाठ्य सगी विषय

शेरशाह सूरी और कैंची लिपि

इतिवृत्त विंशत्य शतिका-ए-शेरशाही में शेरशाह की राजधानी काबुल के नज़ारे में बिलखते से वर्णन किया गया है : इसमें लिखा है कि अकबर शेरशाह ने देश से राजधानी काबुल के पास निवास की कमान और इस कार्य के लिए अपने लोगों की नियुक्ति की। प्रत्येक परगना (राज्य इत्यादि) में एक सिकंदर (अधिकारी का एक पर जिसका मुख्य काम किसी काम या क्षेत्र से राज्य काबुल को लाना था), एक जमीन (राज्य अधिकारी को राज्य काबुल की लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी होते थे), एक फौजदार (कामों का पैसा रखनेवाला), एक फारसुन (हिन्दी, लिखनेवाला) को देसी भाषा और लिपि में लिखता हो और एक फारसुन को फारसी में लिखता हो। प्रत्येक परगना में एक फारसुन का पर भी होता था जिसका मुख्य काम बस बाजार या क्षेत्र का इतिहास, वर्तमान और भविष्य की योजना के बारे में लिखना होता था।

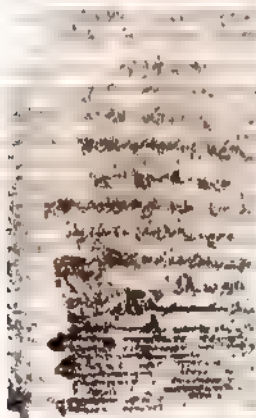
इसी विंशत्य के अनुसार एक राज्य में एक सिकंदर, एक जमीन, एक फौजदार और दो फारसुन (एक हिन्दी नवीस और दूसरे फारसी नवीस) होते थे। हिन्दी नवीस के रूप में फारसुन (हिन्दी) की नियुक्ति शेरशाह सूरी की प्रशासनिक नीति थी। इस तरह की व्यवस्था, इस तरह के पर और इस तरह की सैन्य शेरशाह के पूर्व के किसी शासक की नहीं थी। संक्षेपित है कि शेरशाह के शासनकाल में उनके देश और फौजदार अधिकतर

हिन्दू थे और उन्हें चाहेती का या तो कितनाकुल ज्ञान नहीं था, अधिक कम ज्ञान था। सेरसाह की लम्बे बड़ी साक्षिपत्र यह थी कि वह अन्य राज्यों से अलग अपने रैयतों के हितों के लिए इनेसत चिन्तित रहता था और उसके कारखानों के बारे में कार्य करने को उत्तुंग रहता था। उसकी इसी सोच ने इसे प्रेरित किया कि वह अपने रैयतों के सम्बन्ध सभी प्रकार के सेना-सेना सम्बन्ध कानूनों के हिसाब-किताब को अधिक चरदारी बनाए, उसने हिन्दू रैयतों को इसलामी से सम्बन्ध में जाने के लिए हिन्दी नवीन काराकुल को नियुक्ति की और प्रत्येक परगना में ऐसी नियुक्ति के लिए परवर्धित किए गए। विरिक्त रूप से सेरसाह द्वारा उत्तराए गए इस प्रकार की सोच द्वारा हिन्दू रैयतों को मिलत किन्हीं अपने उत्तराए, राजान् जमी के हिसाब-किताब मिलाने और उत्तराए कार्यवाहियों को संयुक्त करने तक में कई प्रकार की उत्तराए होती थी। सेरसाह ने ऐसी व्यवस्था कर हिन्दू रैयतों का दिल जीत लिया था। वे राज की इस व्यवस्था से पूर्ण संयुक्त थे और उन्हें इसका अनुमान हो गया कि राज उनकी परतों के बारे में सिर्फ कार्य नहीं करता, काम भी करता है। ऐसी व्यवस्था के बारे में सेरसाह से पूर्व के किसी राज ने आज तक सोच भी नहीं था। प्रत्येक परगना में एक नर कानूननी था होता था जो पूरे परगना के पटवारी का प्रमुख होता था। पटवारी का कारखाना अपने राजाकेव केवले निर्दिष्ट में लिखा करते थे। पटवारी एवं कानूननी का पर किन्हीं न किन्हीं सम्बन्ध में आज भी राजा के कई कर्मों में लिखत है। जो हिन्दी नवीन पटवारी थे, वे अपने जो पत्राकेव केवले में लिखत करते थे और ऐसे करने में उन्हें कोई रुकावट नहीं थी। केवले में लिखत पत्राकेवले से राजा को सीधे और पर कोई मतलब नहीं होता था क्योंकि राजा सम्बन्ध में जो पत्राकी में लिखत पत्राकेवले सुनने किए करते थे। केवले में लिखत पत्राकेवले से सीधे ही पर हिन्दू रैयतों को ही सम्बन्ध होता था। यदि तो कलकर पटवारी के राजाकेव लेखन में एक प्रकार से स्वतंत्रता होती चली गयी। प्रत्येक परगना में मुसिक-ए-काका का नर भी होता था। कल काता है कि मुसिक-ए-काका के नर पर कामकाय पत्रा के लेखन को कानूननी में परवर्धित किया गया था क्योंकि पटवारी का में भी अधिकतर कामकाय पत्रा के लेखन ही होता थे। कलान्तर में मुसिक-ए-काका का प्रचलित रूप 'मुसी' हो गया। हालाँकि सामाजिक दस्तावेजों में इसका उल्लेख नहीं मिलता है।

इतिहास विज्ञान सेरसाह द्वारा एका किंच उत्तराएकी में लिखित है कि सेरसाह की यह उत्तराएकी गीति थी कि अन्त के बीच के ही प्रशासनिक अधिकारियों की नियुक्ति की चर्चा और कलान्तर ऐसे कर्म पर उनकी में जो अधिकारियों की ऐसी की चर्चा जिसका उल्लेख सम्बन्ध

कालों को ही। इसलिए वे समस्त कालों से संबंधित नहीं हैं किन्तु जहाँ वे लोगों को ही परामर्शित करते हैं और समझाते हैं, तब तब समझनेवालों को वे सब कालों से संबंधित करते हैं, अतः समस्त मानवकालों से ही परामर्शित किया जाता है।

विज्ञान संशोधक दूसरे काम में अपनी विज्ञान होरलाइ सुटी में अपनी विज्ञान है कि राष्ट्रीय समस्त की समस्त कोटी इत्यादि चीजों का समस्त की और इसका प्रत्यक्षिक परामर्शकारी 'मुक्तदश' का मुक्तिकार का समस्त का। प्रत्येक चीज में एक समस्त का समस्त का विज्ञान मुक्त का समस्त कालों का। समस्त को ही मुक्त का है - समस्त का प्रत्यक्षिक प्रत्यक्षिक समस्त विज्ञान विज्ञान। समस्त की समस्त की को ही विज्ञान और समस्त का का विज्ञान ही, इसका विज्ञान अपनी समस्त में विज्ञान। इसी विज्ञान में विज्ञान का है कि प्रत्येक मुक्तिकार को अपने चीजों में ही ऐसे लोगों की विज्ञान का समस्त ही का एक को ही की समस्त ही और दूसरे को समस्त का ही। इसके बाद एक चीज को समस्त से समस्त कालों की समस्त का है।



चित्रकला 19, 1940 (1940 A.D.) की समस्त होरलाइ सुटी का समस्त (समस्त समस्त, 1970)। इसमें समस्त की समस्त में समस्त का चीजों को समस्त में समस्त में समस्त है-समस्त A.D.

कारकुम में हिन्दी नबीस की निवृत्ति शेरशाह के राज की ही परिकल्पना थी। शेरशाह ने पूर्व के शासकों के राजकाज में यह कल्पना नहीं की गई थी कि स्थानीय जनता द्वारा लिखीं गयीं अन्धकारी लिपि में भी जमीन एवं राज्य से संबंधित दस्तावेज तैयार करना वांछित है। शेरशाह के शासन की एक बहुत बड़ी खुबसूरती का संदर्भ में यह इतिहासकारों द्वारा अधिकतम किया गया है। शेरशाह ने रैवतों के हितों का सबसे अधिक ध्यान रखा और वह उनके प्राथमिक दायित्वों में सम्मिलित था। उस समय अधिकतर रैवत हिन्दू थे। हिन्दू ही किसान थी वे और अधिकतर 'जंतों' के अधिकारी थे। हिन्दू रैवत फारसी लिपि नहीं जानते थे। अतएव शेरशाह ने ऐसी व्यवस्था बनाई ताकि राजकाज का दस्तावेज फारसी में हो और रैवतों का दस्तावेज हिन्दी में तैयार हो। हिन्दी नबीस रैवतों की जरूरतों को पूरा करने के लिए तैयार की गई। शेरशाह ने हिन्दी नबीस का प्रयोजन करने का अवसर असर सम्मान पर पहना स्वाम्याधिकार क्योंकि इससे यह संदेश व्यक्त होता था कि शेरशाह (शासक) अपने रैवतों के हितों की रक्षा करने के लिए तत्पर एवं कटिबद्ध है। इससे पूर्व मुगलकालीन किसी भी राजा की ऐसी सोच नहीं हुई थी और ऐसी व्यवस्था कर शेरशाह अपने पूर्वजों एवं राजवंश के क्षेत्र में बहुत आगे तक सोच रखनेवाले राजा के रूप में इतिहास में स्थापित हो गया। ऐसा मुसलमान राजा जो हिन्दू रैवतों के हित के लिए चिन्तित हो और अपने दस्तावेज हिन्दी नबीस कारकुम से तैयार कराया सके।

मिडिल एजन्सियाल के पूर्व कौमी को राजकीय लिपि का दर्जा प्राप्त हुआ था। शेरशाह सूरी ने यह अवसर दिया कि उनके राज्यदेश, कोषपाल (सन्त-फारमान) फारसी एवं कौमी दोनों लिपि में प्रचलित हो। कौमी को यह दर्जा इसलिए प्राप्त हुआ कि कौमी असम जनता की लिपि थी।

राजकीय कोषपाल - दिसम्बर 1540 में शेरशाह सूरी द्वारा जमीन से संबंधित दानपत्र में फारसी के साथ-साथ कौमी का प्रयोग किया गया है। सन्त की भाषा फारसी है और इसका लक्षण अनुवाद कौमी लिपि में किया गया है। इसलिए ऐसे फारमानों की संख्या काफी कम है। शेरशाह सूरी से लेकर दिल्ली सल्तनत एवं मुगलकालीन भारत की अवधि में अधिकतर फारमान या सन्त फारसी भाषा एवं फारसी लिपि में ही मिलते हैं। शेरशाह सूरी से संबंधित आदेश इस स्तर को प्रभावित करता है कि कौमी शेरशाह सूरी की राजलिपि में सम्मिलित थी और इसे सामान्य एवं व्यवसाय लिपि का दर्जा प्राप्त हो चुका था।

संदर्भ संकेत :

1. तरीख ए शेरशाही, पृष्ठ - 755
2. तरीख ए शेरशाही पृष्ठ - 307
3. संशाह सुर एन्ड डिव हायनेस्टी पृष्ठ-145
4. शेरशाह सूरी, हुसैन खान, पृष्ठ 304
5. शेरशाह सूरी, पृष्ठ - 305
6. ओपेनजट टू इन्फेन्ड रि कौमी रिक्वेस्ट इन आईएसओ/आईसी 10646, पृष्ठ 76

अंग्रेजी शासन में कौंधी का विकास

कौंधी का जनशोकरण और विकास - वर्ष 1824 को शिवाजीराज के प्रतिकेदन को अनुसार फारसी लिपि को समस्त के उच्च वर्ग के लोग विनम्र मुसलमान और जड़े-शिखी हिन्दुओं की संख्या अधिक थी, पसंद करते थे। परन्तु कौंधी लिपि को खूबे-खूबे एवं सामान्य कौंधी के लिए आम जनता द्वारा प्रत्येक गांव में उपयोग किया जाता था। कौंधी की लोकप्रियता, सर्वजन्यपक्ष में इंग्लिश प्रेसिडेंसी के सरकारी अंग्रेज शासकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। वर्ष 1830 में बंगाल के सरकारी लेफ्टिनेंट गवर्नर सर ऐंगले एंड्रेस द्वारा निकाले गए निर्देश के बाद कौंधी विहार के सरकारी कार्यों को लिपि बन गई। ऐंगले ने एक आदेश जारी किया जिसके अनुसार कौंधी लिपि का ही उपयोग विहार के न्यायालय में होना शुरू हुआ क्योंकि कौंधी लिपि विहार की जनता के लिए सुगम एवं सर्वोपरि की भावना फैलती की स्थान पर कौंधी को ही सरकारी एवं न्यायालय की लिपि बननी जाए, यह उद्देश्य ऐंगले के पास। स्थानीय लिपि में सरकारी और न्यायालय के कामकाज तक जनता की अधिक पहुँच हो सके, यही मुख्य कारण था। अक्टूबर, 1831 तक फारसी का उपयोग समाप्त बन्य हो गया और उभयपक्ष स्थान कौंधी का देवनागरी लिपि में से लिख।

ऐसा नहीं है कि कौंधी को सरकारी लिपि एवं न्यायालय में इस लिपि की सम्पूर्ण प्रविष्टि साक्षरजनता में ही हो गई। प्रिवेट साक्षरजनता के पूर्व कौंधी को एकदिवसीय लिपि का दर्जा मिला हुआ था। संस्कृत सूरी ने यह आदेश दिया था कि उनके राजवंश, संवत्सर (सम-वर्ष)।

भारती एवं कीमती दोनों लिपि में प्रकाशित हो। कीमती को यह दर्जा इसलिए मिला क्योंकि कीमती ज्ञान भण्डार की लिपि थी। वर्ष 1875 में जयपुर के जय शिक्षा विभाग के निर्देशक श्री श्री.नेसाकिल्ल महोदय ने भारत और विदेश में व्यापक प्रचलन की संभावना को परीक्षा दी और उन्होंने कीमती को मान्यीकरण का भी आदेश दिया। जनवरी 1881 के बाद से सरकारी एवं अर्ध-राज्य स्तर में विद्यालयों के कार्यों की व्यवस्था करते हुए शिक्षा कि उन्होंने अपने कार्यों में एक विद्यालय संप्रदाय विकार कर दिया जिसमें भारत के सभी राज्यों का विद्यालय व्यवस्था हो सका। विद्यालय में विद्यालय में अपना ध्यान नक, कोली समाज एवं किसानों की सामाजिक आर्थिक स्थिति सुधारने एवं सांस्कृतिक, लोकमन्य और के अध्ययन पर दिया। वर्ष 1885 में 'विद्यालय का समाज जीवन' विचारों द्वारा विचार व्यवस्था विचारों में से एक है। उन्होंने गण विद्या पर कोटस शिक्षा विभाग के व्यवस्था से प्राथमिक व्यवस्था एवं विचारों के संबंध में महत्वपूर्ण वर्णन किया गया है।

विचारों प्रमुखता में एक ही ओर के पर पर विचार किए गए पारस्परिक लिपि के संबंध में मान्य है। तद्विषय विद्यालय की हेतुकर ज्ञान के अनुसार विचारों वर्ष 1873 में एस.डी.ओ.वन्दन वचन की गयी। इनके अनुसार विचारों विचार कर से कम से कम तीन छात्र एक एक पर पर छात्र और संप्रदाय वर्ष 1876-77 तक वे नहीं रहे। पारस्परिक एवं एस.डी.ओ. के प्रकाश का ज्ञान कि एस.डी.ओ. कार्यालय के पारस्परिक पर किया गया है, विचारों वर्ष 1880 तक नहीं रहे। इस प्रकार इनके प्रकाश की विविध लिपि का संसार किया जाऊँ नहीं है। इनके प्रकाश में ही प्रमुखता में एक प्रकार का निर्माण हुआ जिसका नाम विचारों लोक पाठ के अन्तर्गत 'विचारों' लोक के रूप में विचारों है। विचारों के व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता की कि वे 'समाज' की तरह व्यवस्था जीवन नहीं मुखल्य वे। समाज के बीच रहने उन्हें काफी पसंद था और यही कारण है कि उनके व्यवस्था एवं रचना में समाज जीवन का सम्बन्ध सबसे अधिक विचारों है। इसी ही नहीं, समाज के बीच की चीजों को उन्होंने राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय मान्य के बीचों के रूप में स्वीकृत किया। कार्य विचारों अपने संपूर्ण जीवन भला में समाज और छोटी कोली पर कार्य करते थे।

४३० विचारों का साहित्योपेक्षा

लोकिका ४३० अन्त मुद्रा, अपनी विचारों ४३० विचारों का साहित्योपेक्षा में वर्णन किया है कि वर्ष 1881 का समाज भारतीयों पर कोली भाग कोली की स्वीकार्यता की दृष्टि में भी स्वीकार्य है। सर एस.डी.ओ. के समाज में समाज विचारों में 'कमलिका' में भारतीय लिपि का स्वीकार करते कोली नहीं था कीमती लिपि का उपयोग करते हुए था। सर कोली

कैथी लिपि में पाठु के फोंट का विकास किया। यह फोंट मैथिली, मगही और मैथिली कैथी, अर्थात् कैथी के तीनों स्वरूपों के लिए किया गया। इसका वर्णन प्रियर्सन द्वारा भद्र का मन्थन सर्वेक्षण के पांचवें भाग नामक विराट् ग्रंथ में किया गया है।

कैथी की मान्यता जब बिहार के न्यायालयों में हो गई, इसके बाद अंग्रेज हकीमों के लिए, कायस्थों के लिए संबंध न्यायालयों के कार्यों से था, उनके लिए कैथी लिपि सीखना एक प्रयत्न से अनिवार्य बँसा हो गया। वर्ष 1881 में प्रियर्सन ने ए ईस्टइंडीज ऑफ कैथी कैरेक्टर नामक पुस्तक भी रचना की। आज की विधि में भी प्रियर्सन द्वारा कैथी के उन्मुख की विधि में विचार-सम-समय-सहायपूर्ण साक्षित हो रहे हैं।

संदर्भ :

1. क्रिस्तोफर आर. किंग, वन लीनिंग टू स्क्रिप्ट्स
प्रकाशक-अक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, मुम्बई, 1994
2. डा. हेतुकर झा पृथपूर्व प्राध्यापक, सभा-बहाल विभाग, पटना क्रियाविज्ञान,
महाराष्ट्रविद्यालय कापेश्वर सिंह कल्याणी फाउंडेशन, दरभंगा (प्रस्तुत)
3. डा. आशा गुप्त, डा. प्रियर्सन का साहित्यविज्ञान

कैथी का प्रयोग

कैथी का प्रयोग लोक प्रकार से सम्पन्न के लिए इसे एक प्रमुखताम करना होगा कि कैथी का प्रयोग फिर-फिर लोगों के लिए होता था । यह समझा जाता है कि जनजीवन एवं शिक्षा की व्यवस्था होने के बाद कैथी की लोकप्रियता में शक्तिशाली वृद्धि होती चली गयी । कैथी का उपयोग इसके पूर्व सामान्य प्रशासनिक कार्यों के लिए, प्रमुख प्रमुखतामियों में से एक के रूप में लोक के लिए, निजी प्रशासन एवं छिटपुट लेखन, दस्तावेज के लिए एवं ईसाई धर्मगुरु द्वारा धर्मशिक्षण कार्यों को बढ़ावा देने हेतु कागजातों के प्रकाशन के लिए होता था । इन चीजों का संक्षेप में निम्न रूप से वर्णन किया जा रहा है :

कैथी में टाईपसेट का विकास - तत्कालीन सरकार द्वारा कैथी को मिल रही लगभग प्रोत्साहन एवं समर्थन से कैथी लिपि में टाईपसेट का विकास किया गया । इसलिए भारतीय लिपि में यह भाषा के लिखी जाने वाली लिपि ही थी । नेरफिल्टर म्हादेव द्वारा दिए गए संकेतों के बाद ही टाईपसेट का विकास आरंभ हुआ । नेरफिल्टर म्हादेव ने ही कैथी लिपि में प्रिंटिंग हेतु धनु से निर्मित प्रथम फॉन्ट विकसित किया जिसका उपयोग एक समुन्नत और मानकीकृत कैथी लिपि को बनाया गया । इस फॉन्ट का उपयोग उत्तर पश्चिम एवं अन्य राज्यों के लिए भारतीय शिक्षा की प्रथम बोधी को बनाने हेतु वर्ष 1880 में हुआ । बिहार सरकार ने भी भारतीय स्वीकृति मिलाने के बाद वर्ष 1880 में इस फॉन्ट को स्वीकृत एवं कार्यान्वित किया । अन्य स्तर पर मिला रही स्वीकृति एवं प्रिंटिंग के विकास से संबंधित हो रहे कार्यों को देखते हुए निजी प्रकाशकों ने भी इसमें रुचि लेना आरंभ किया । बनेकीपुर (पटना) में अखिल भारतीय प्रेस के निर्देशक रामदीन सिन्हा प्रियंस महोदय के समुदाय कैथी टाईप के संबंध

विद्युत : वर्ष 1881 में सरकार द्वारा लिए गए निर्णय को अनुसार प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों में पढ़ाई करनेवालों कितनेवें कौमी लिपि में छपेंगी— बिहार की स्थिति क्लृप्त अलग थी । पगरी का प्रचार पडा बहुत ही कम था और प्राथमिक शिक्षा में लोग इसे सीखना नहीं चाहते थे । इसके लिए देवनागरी सीखना एक प्रकार से अनिवार्य था— लोग इसे इच्छा एवं चिन्तनपूर्ण मनसे थे और ऐसा विचार भी प्रकट किया जाता था कि यह खंडों के बच्चों के सीखने की लिपि है । प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों की कितनेवें जब कौमी में छपने लगी तो 'संस्कृत' परीक्षा पास करनेवालों को आस्यन प्राप्तकथन बनने के लिए भी प्रयत्न करना होने लगे । राजपूताना बिहार सरकार की शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदनों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि प्राथमिक एवं मध्य विद्यालय की शिक्षा के लिए कौमी बहुत लाभप्रिय लिपि थी। बिहार सरकार द्वारा प्राचीन शिक्षा का परीक्षण अपने हाथ में ले लिया गया था । ज्ञान के अभिव्यक्तिओं को लगातार ऐसे प्रतिवेदन एवं अंकड़े मिल रहे थे कि प्राचीन क्षेत्रों में कौमी लिपि की उपयोगिता है और जहाँ एवं शिक्षकों को पठन-पठन हेतु यह काफी सुगम भी है । बिहार सरकार के समस्त प्राथमिक शिक्षा के व्यापक प्रकार द्वारा एवं इसे गाँव-गाँव, घर-घर तक पहुंचाना एक चुनौती के सामने थी और यह चुनौती तभी पूरा की जा सकती थी जब सरकार कोई दोषी लिपि-यन चयन करे बिना ज्ञान-समझने करने काम से कम कुछ व्यक्ति इसके लाभ-में हों । निश्चित रूप से कौमी इस अवकाश पर कार्य करती थी । दूसरे स्थलों में इसे भी कहा जा सकता है कि सरकार को ज्ञान कौमी को अभिव्यक्ति धर्म दूसरी विचार-धारा-धारा ज्ञान कौमी नहीं था ।

बिहार में कौमी को प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों में शिक्षा देने की लिपि के रूप में स्वीकार किया गया, जहाँ उत्तर पश्चिमी प्रांत एवं अन्य राज्य द्वारा इससे विपरीत नीति लागू की गई वर्ष 1854 में प्रकाशित बेरी स्मूथ एवं शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदन में कहा गया कि कौमी लिपि में वर्ष 77308 कितनेवें प्रकाशित की गई जहाँ देवनागरी में प्रकाशित कितनेवें की संख्या 25151 थी और यह पूरे राज्य का अंशदा था । इसलिए कौमी लिपि पढ़नेवाले बच्चों की संख्या, प्राथमिक कितनेवें की संख्या एवं ज्ञानवाले विद्यार्थी की संख्या देवनागरी से बहुत अधिक थी, फिर भी सरकार ने कौमी को बदले देवनागरी को समर्थन एवं प्रोत्साहन दिए एवं इससे संबंधित नीति भी सरकार द्वारा बनाई गई । राज्य में चोखुरी एवं अन्यथा चयन काली एकलक्षिक थी फिर भी इन चयनों को दक्षिण कर हिन्दी को प्रथम एवं समर्थन सरकार द्वारा दिया गया और कौमी को बदले देवनागरी को प्राथमिक एवं मध्य विद्यालय की शिक्षा लिपि के रूप में मान्यता दी गई । वर्ष 1913 तक इन विद्यालयों में शिक्षा लिपि कौमी ही रही ।

कौमी लिपि-में इसका एवं लिपि की अवधिक शिक्षा संबंधी कितनेवें - राजकीय लिपि का एवं मिलने के बाद अंग्रेज हाकिमों एवं सरकारी अधिकारियों-कर्मचारियों को कौमी लिपि

सौजन्य एक प्रकार से अनिवार्य बन गया। इन वर्ग के लोगों को आसानी से कौची सीखने के लिए अनधिकृत किताबों का प्रकाशन किया गया। प्राथमिक एवं मध्य विद्यालयों के ऐसे शिक्षक जो अब तक कौची लिपि से अनभिज्ञ थे उनके लिए भी ऐसी ही पुस्तकें तैयार की गयीं। इनमें से कुछ का विवरण निम्न है।

(क) कौची वर्णमाला (वर्ष 1880) लेखक -अम्बिकर प्रसाद - यह किताब सैक अक्षरद हुरीन द्वारा संकलित किताब भक्तवत्-ए-अक्षरदी का कौची अनुवाद था। इसका प्रकाशन लखनऊ के मुंशी नवल किशोर प्रेस में हुआ। 76 पृष्ठों की इस किताब में मुख्य रूप से कौची में पत्र लेखन की विधा के संबंध में विस्तार से वर्णन है। इस किताब का प्रथम प्रकाशन वर्ष 1880 में हुआ और वर्ष 1889 आते-आते इसके 10 संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। ऐसी दूसरी किताब हिन्दी में कौची लिपि थी। इन दोनों किताबों का मुख्य उद्देश्य कभी प्रकाश के पत्र लेखन, सरकारी पत्र लेखन एवं शहरान से संबंधित दस्तावेज तैयार करना था।

(ख) ए कौची ईंडियन (वर्ष 1881) - लेखक जॉर्ज प्रिंसेप - कलकत्ता - इस किताब का प्रथम मुद्रण वर्ष 1881 में हुआ परन्तु किताब की लोकप्रियता को देखते हुए द्वितीय संशोधित संस्करण वर्ष 1899 में कलकत्ता के डी भाकर स्प्रिंक एण्ड कं द्वारा 'ए ईंडियन टू द कौची कीन्ट्र' के नाम से 61 पृष्ठ का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तक में 30 ऐसे पृष्ठ दिए गए जो विश्व आधारित थे और इसमें कौची लिपि लिखने के अलग-अलग तरीकों के बारे में विस्तार से जानकारी दी गयी थी। इन पृष्ठों के अधिकतर व्यवस्था अनुसार के रूप में थी।

(ग) कौची वर्णमाला (वर्ष -1877) लेखक -इन्दुमान प्रसाद - यह किताब कौची सीखने के उद्देश्यपूर्ण थी और इसकी मात्र 4 पृष्ठ थे।

(घ) कौची ओ हिन्दी वर्णमाला (वर्ष 1882), लखनऊ, बिहार - कौची एवं हिन्दी दोनों की यह किताब वर्ष 1882 में नसीम हसन प्रेस द्वारा प्रकाशित हुई थी। 16 पृष्ठों की यह किताब कौची एवं देवनागरी, दोनों लिपियों में लिखी हुई थी और इस किताब की लगभग सभी कौची एवं हिन्दी सीखी जा सकती थी।

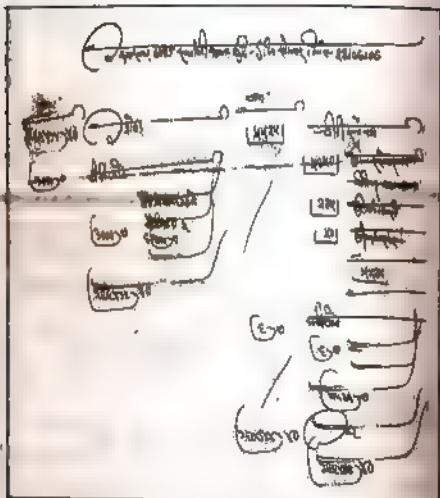
(ङ) पत्र द्वितीयिणी (वर्ष 1870) लेखक -शिव गरावण - पत्र द्वितीयिणी अर्थात् कौची अक्षरों में बिट्टरी पत्र लिखने की रीति सीखनेवाली पुस्तक। यह किताब मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ में छपी थी। इस पुस्तक में पत्र, आवेदन पत्र आदि आठों ढंग से लिखने के तरीकों का वर्णन किया गया था। यह किताब पेशेवर ढंग से आवेदन, कारखाने तैयार करनेवालों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा गया था। इस पुस्तक का अनुवाद पंडित तिलकप्रसाद द्विवेदी पदले हिन्दुस्तानी (वर्ष) भाषा की किताब 'मुकीम अल इम' से किया गया। यह 44 पृष्ठों की किताब थी।

(ब) जनगणना विधिसूचक : कैथी की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए अंग्रेज सरकार के अधिकारियों ने इस लिपि का उपयोग अन्य तरह के प्रशासनिक कार्यों में करने का निर्णय लिया। इनमें जनगणना प्रचालन एक था। बंगाल के कलकत्तीय प्रशासिकाध्यक्ष हेनरी वेयरली ने निर्णय लिया कि कैथी लिपि का जनगणना संबंधी कार्यों के लिए भी उपयोग किया जाए। इसके लिए यथा विहित फॉर्म भी तैयार हुए। वर्ष 1874 में हेनरी वेयरली द्वारा दिए गए निर्णय का सार था कि जनगणना संबंधी सारे फॉर्म सरकारी प्रेष, कलकत्ता में छपाए जाते थे। इन फॉर्मों को स्थानीय जनता की सुविधा के अनुसार स्थानीय लिपि एवं भाषा में छपाए जाते थे। इसके लिए प्रथमतः बंगाल में अनुसरण किया गया है ताकि बंगाल के जमींदारों को सुविधा हो। बिहार के लिए हिन्दुस्तानी भाषा में फारसी और कैथी दोनों अक्षरों में ब्रिटिश के लिए ब्रिटिश खोजागपुर और संतोसपरतों के लिए जगदी अक्षर में देवनागरी और दार्जिलिंग एवं आसमल के क्षेत्र के लिए नेपाली में इसका अनुसरण होता था।

(क) भूमि संबंधी दस्तावेज एवं भू-सूचना की रखीर : सक्रिय सरकार द्वारा किए गए निवेश के अनुसार भूमि संबंधी दस्तावेज की रीति में ठीक किए जाने वाले एवं निवेश के लिए सरकार द्वारा इसकी स्वीकृति भी मिलेगी। भू-सूचना की रखीर की भी में कार्य शुरू और इसका उपयोग भी किया गए। इस व्यवस्था को लागू करने का काम भी विधान के माध्यम है।

[illegible]

पीसी में ५ हजार की रकम, फोन-६० की उपहार वस्तु, जूत-कपड़े, यंत्रणाली (सामान्य) :



सहायक में व्यवस्थित प्रस्तुत की जाय के अंत-प्रोत की अंतिम मुद्रा काय,
अथ अंतिम, विज्ञाप विज्ञाप प्रीति

(अ) साहित्यिक प्रीति . अंग्रेजी शासन के पूर्व मुगल शासन में कालून व्यवस्था की-सहित के रूप में यह व्यवस्था था । अंग्रेजी हुकूमत में इसका नाम एवं व्यवस्था बदलकर अंग्रेजी की . एवं सी.आर.पी.सी.सहित नाम आया जगता हमसे धली प्रति प्रतीयत हो, इस समय कीनी में इसका प्रकाशन किया गया ।

(इ) साहित्यिक कारोबार में कीनी - कीनी लिपि का प्रयोग आधिकारिक लेन-देन संबंधी विवरणी लिखने के लिए बहुतायत में होता था । कीनी लिपि में प्रामाणिक रसीद दिवस का प्रमाण पाया की । साहित्यिक देव से मुझे लगे अपना कारोबार संबंधित दस्तावेज एवं इसके

कैथी के उपयोग में एकएक वृद्धि वर्ष 1975 में हुई जब अंग्रेज सरकार द्वारा कैथी लिपि के मानकीकरण का निर्णय लिया गया। साथ ही इसी समय यह भी निर्णय लिया गया कि प्राथमिक शिक्षा में भी कैथी लिपि का ही उपयोग किया जाए। कैथी के उपयोग एवं संरक्षण में दूसरी बार जब वृद्धि हुई जब तत्कालीन बिहार सरकार ने निर्णय लिया कि कैथी को शासकीय लिपि का दर्जा दिया जाए और नवजातों की लिपि के रूप में भी कैथी को मान्य दी गयी। यह वर्ष 1881 में हुआ। इसके बाद फारसी के स्थान पर कैथी का उपयोग नवजात में होना आरंभ हो गया और फारसी का स्थान कैथी ने ले लिया और नवजात के प्रत्येक कैथी लिपि में तैयार होने लगे। इतना ही नहीं, कैथी नवजात की लिपि बन गई।

संदर्भ :

1. क्रिस्टोफर आर. किंग, जन लैंग्विज्जु रिक्वियर, प्रकाशक-ऑक्सफोर्ड यूनि. प्रेस मुंबई-1994
2. आधुनिक हिन्दी के विकास में साहित्यिक प्रेस की भूमिका, डॉ. लक्ष्मण राम सिंह, बिहार राज्यकाजीकर, पटना, वर्ष-2000
3. डॉ. अशुमान पांडेय, प्रोफेसर टू इनकोड द कैथी रिक्वियर, वर्ष-2007
4. डॉ. गोविन्द झा सहायकार

कैथी, फारसी और देवनागरी

कैथी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के शब्द कैथस्व से हुआ है जो उत्तर भारत की एक विशेष जाति है। कायस्थ ब्राह्मणों द्वारा लिपि का अपभ्रंस कायस्थी एवं इसके बाद कैथी में हो गया।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सन 1893) - काशी के बंगाल कॉलेजिएट स्कूल की खंयवी कक्षा के कतिपय छात्रों ने 'पाद-विमल-समिति' की स्थापना की दृष्टि से, जिसका एक उद्देश्य नागरी-प्रचार भी था, 10 मार्च, 1893 ई. को 'नागरी-प्रचारिणी सभा' को जन्म दिया। इस सभा की प्रथम बैठक 9 जुलाई, 1893 ई. को तथा दूसरी बैठक 16 जुलाई, 1893 ई. को हुई, जिसमें इसके संबंध में विचार हुआ। 16 जुलाई, 1893 ई. को इस सभा का 'स्थापना दिवस' मनाया गया। इसके संस्थापक श्रीगोपाल प्रसाद भगने गए हैं। इसके प्रचारमंत्री श्री हनुमन्तराय दास चुने गए थे।

इस संस्था का मूलमूल उद्देश्य हिन्दी-भाषा-साहित्य तथा देवनागरी लिपि का प्रचार-प्रसार था। यह विशुद्ध साहित्यिक संस्था है। इसने कचहरियों में हिन्दी की प्रोत्साहन तथा कड़ीकोली हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए निरन्तर कार्य किया है। इसके पास अपना प्रेस नहीं था। फिर भी इस संस्था के प्रमुख कार्यकर्ता श्री रामकृष्ण दास को प्रत्यक्ष पर हिन्दी के चरम सम्प्रदायों, श्रद्धालुओं और लेखकों के जीवन चरित्र के प्रकाशन की योजना स्वीकृत हुई।

मुस्लिम सल्तनत के पूर्व तक भारत में हिन्दी राज-काज की भाषा थी। सल्तत परिवर्तन के साथ-साथ कुछ काल तक राजकीय कार्यालयों में भाषाएँ भाषा के रूप में हिन्दी बनी रही। हिन्दी की प्रतिष्ठित अकबर के शासन के पच्चीसवें वर्ष तक राजभाषा के रूप में कायम थी। मुस्लिम - राजदारी में कछहरी की भाषा फारसी बना दी गई। इस देश की जनता के लिए यद्यपि फारसी नहीं थी तथापि कचहरियों में इसी का व्यवहार होने लगा। कहा जाता है कि

आजकारण ठगू को ये, इस कारण जगत की आवाज अंग्रेज सरकार तक नहीं पहुँच सकती थी । विचारों : लोगों को निर्भीकता सम्पन्न करना पड़ा ।'

दुन्दीराली की का कहानी पत्रिका विहार में भाषाभरण का कला है । विहार के पहले हिन्दी -पत्र 'विहार कथु' का सन् 1872 ई. में कलाकला से मुद्रण-प्रकाशन हुआ । सन् 1874 ई. के 'विहार कथु' सम्पादकता ईश्वर पटना पत्रक अला । इसमें विहार के हिन्दी भाषी प्रमुद्रण होने के कारणों पर अपनी विचारविमर्शिता का प्रकाश मिलता । इस पत्र के प्रकाशन का समय विहार की अन्धकारों और विचारधर्मों में हिन्दी की प्रतीक्षा करण था । इस धर्म को कला में प्रकाश 'विहार-कथु' की का प्रकाश विचारक करता था ।

विद्यार्थी की कार्यक्षमताओं में हिन्दी-भाषा-प्रयोग को बढ़ावा देने, विद्यार्थियों में हिन्दी का प्रयोग करने तथा हिन्दी के सम्बन्ध में प्रचार-प्रसार के लिए जन-आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन के नेतृत्व में डॉ. किरणदत्त, कलकत्ता विश्व 'विद्यार्थी क्लब' के अध्यक्ष कोसलकम मुखर्जी, अन्धप्रदेश के लालू, लक्ष्मण कान्हेय आदि प्रमुख थे। आन्दोलनकारी राजीवगाने पत्र और हिन्दी के सम्बन्ध में। इन वर्षों में 'विद्यार्थी क्लब' के अध्यक्ष में सरकार तथा जनता की भी बढ़ी। विद्यार्थी, समर्थन कर प्रत्यक्ष योगदान किया। आन्दोलन के कारण अंग्रेजी सरकार को अपने पूर्व निर्णय पर फिर सोचना पड़ा।

जर्मनी का काम में आता तो विचारविमर्शों के बजाए जर्मनी-रूस की मूलभूत समस्याओं में हिन्दी की उपस्थिति के लिए आवश्यकपूर्ण सिद्ध हुई। अमेरिकी सरकार की यह धारणा थी कि जर्मनी में अधिक उपस्थिति के साथ काम किया जा सकता है और उसके साथ कारवाही सम्भूत है। हिन्दी में काम करके उसकी दृष्टि में व्यवहार संभव नहीं था। अमेरिकी अनुभवों की दृष्टि से, अमेरिकी ने पटना-प्रमोशन के पटना विभाग की कार्यवाही में काम करनेवाले विभागों की, इस समय की योजनाओं के लिए, अमेरिकी-परीक्षा पर अमेरिकी विभाग तथा परीक्षा में 70 कारवाही और प्रमोशन रीमन लिफ्टिंग के। जर्मनी-प्रमोशन एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जो हिन्दी भाषा और रोजगारी लिपि में अमेरिकी परीक्षा परीक्षा देनेवाले थे। जो अमेरिकी ने परीक्षा की। जब अमेरिकी-प्रमोशन की ने जर्मनी प्रमोशन को अमेरिकी प्रमोशन की। इसी का परिणाम था कि उन्होंने हुए अमेरिकी और सुप्रसन्न संस्थान में रोजगारी लिपि और हिन्दी भाषा को अमेरिकी प्रमोशन, परीक्षा में वे प्रथम और, परिणाम स्वरूप यह धारणा निर्मूल हो गई कि हिन्दी भाषा और रोजगारी लिपि के माध्यम से अमेरिकी में काम नहीं हो सकता।

हिन्दी अधिनियम का परिचय यह हुआ कि ११ सितम्बर, १८७५ ई. से भारत को विचार की कार्यशक्ति में शुरू के साथ-साथ हिन्दी भाषा और संवत्सारी लिपि में अधिनियम का देने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। कलकत्ता हाईकोर्ट ने ११ सितम्बर, १८७५ ई० को अपने परिचय प्रस्ताव १२ में विचार प्रवेश की अपीलों को संवत्सारी लिपि और हिन्दी भाषा में काम करने का आदेश दिया।

इस आंदोलन का कार्यक्रमों में हिन्दी का प्रचलन शुरू हुआ। हिन्दी-आन्दोलन के फलस्वरूप सरकार ने १ जनवरी १८७३ ई., २ अप्रैल १८७४ ई., २० मई, १८७५ ई. और ९ जुलाई,

1875 ई. को रेवन्सगरी सिपि में काम करने के लिए अधिकारियों को आदेश दिए। लेकिन सभी आदेश व्यर्थ सिद्ध हुए। सरकारी कर्मचारी व्यवहार: नगरी के इलाके में सिधिलता बहाते रहे। इससे एक ओर न्याय सरकार को मंजूर न्याय को तब तक रह गई, वहाँ जनता को व्यवहारिक परेशानी होने लगी। फलतः सरकार ने कठोरता से पैरा आई। बिहार की पुलिस को ही आई.सी. ने अपनी परिपत्र संख्या- 1209 दिनांक 6 फ़रवरी, 1879 ई. और पटना प्रमण्डल के अधीनस्थ ने अपनी परिपत्र संख्या-81 के दिनांक 12 मार्च 1880 ई. को रेवन्सगरी का कौंधी के प्रयोग के लिए आदेश दिया। आदेश में कहा गया कि यह निर्देश दिया जाता है कि कौंधी और नगरी सिपि का व्यवहार। अन्यथा, 1881 से निरिक्त रूप से पटना प्रमण्डल और भागलपुर प्रमण्डल (जिसका आदेश बाद में दिया जाएगा) के सभी जिलों में किया जाएगा और उस सिपि के बाद से फारसी सिपि में किसी प्रकार का कार्य नहीं होगा। आदेश का लक्ष्य बहुत सख्त था और कहा कि कड़ा गवाह कि कैसे पुलिस अधिकारी और अन्य कर्मचारी, किन्हीं उच्च सिपि के बाद नगरी और कौंधी सिपि पढ़ने में अभ्युक्ति होगी, वे निरिक्त रूप से अपना स्थान छोड़ दें और ऐसे लोगों को काम करने का मौका दें, किन्हीं ने सिपि नहीं आती हो।

इस प्रकार हिन्दी-आदेशों से बिहार की कचहरियों में हिन्दी की प्रतिष्ठा हो सकी। नगरी के साथ कौंधी सिपि का भी प्रचलन कचहरियों में हो सका। कौंधी बस्तुतः बिहार के पटना और भागलपुर प्रमण्डलों के प्रयोग क्षेत्रों की सिपि थी। कौंधी सिपि के प्रचलन से नगरी का प्रचलन हुआ, क्योंकि जनता की भाषा हिन्दी थी। अन्तिम बात यह कौंधी सिपि में सुगमता से लिख सकती थी। इससे हिन्दी का प्रचार बढ़ नहीं हुआ बल्कि हिन्दी भाषा को कचहरियों में प्रतिष्ठित करने में सुविधा मिली।

बिहार के किन्हीं भी प्रेस ने कौंधी टाईप नहीं बनाया था और न कौंधी में फुल्लों वाली खाली थी। अतः अदालतों में कौंधी के प्रचलन के बाद अदालतों कागजों को कौंधी सिपि में छापने की आवश्यकता पड़ी। इस बार को लंदनविस्तार प्रेस ने अपने ऊपर लिया। इस प्रेस को स्वामी रामलीन सिंह को पटना के तत्कालीन संयुक्त न्यायाधिकारी जी.ए.थियर्सन का सहायपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। थियर्सन महोदय ने सरकार की सहायता से कलकत्ता में कौंधी टाईप बनवाने में उन्होंने 'कौंधी कैरेक्टर' नामक पुस्तक भी लिखी। इस पुस्तक में कौंधी सिपि का इतिहास और परिचय दिया गया।

बंगाल सरकार के सचिव श्री रेनॉल्ड ने फारसी के स्थान पर कौंधी या नगरी को प्रचलित करने के लिए जिला अधिकारियों को 13 अप्रैल 1880 ई. को आदेश जारी किया जिसमें विस्तार से कहा गया कि इस बिन्दु पर पिछले छत वर्षों से गहन विचार-विमर्श चल रहा था, परन्तु सरकार द्वारा पूर्व में जारी किए गए आदेशों को अधिक तकन्नों नहीं दिया जाता था। इसलिए पूर्व में 2 अप्रैल 1874 और 9 नवम्बर, 1875 को ही आदेश निकाला गया था कि पटना, भागलपुर और छोटानागपुर प्रमण्डल के जिलों में हिन्दी भाषा में सारे कागज काम किए जाएंगे, शरीर दस्तावेज हिन्दी में रखे जाएंगे। इसलिए इसमें यह स्वतंत्रता दी गयी थी कि आवेदक चाहे तो अपना आवेदन हिन्दी अथवा उर्दू में सुविधानुसार दे सकते हैं। परन्तु

इस अंदरूनी में यह भी कहा गया कि पुलिस अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को हिन्दी सीखना अनिवार्य होगा।

अदालत में भाषा और साहजिकिलास ड्रेस की सुविधा :

बिहार की अदालत में हिन्दी की प्रविष्टि के तत्पर्य में उपर्युक्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो गया कि लगभग बीस वर्षों के अथक प्रयास के बाद वास्तविक रूप से सन् 1870 ई. में अदालतों में भाषा प्रचलित हुई। बिहार के विभिन्न प्रमण्डलों में भाषा का अंदरूनी विकास तथा वे हिन्दी भाषी क्षेत्र रहे हैं, जहाँ इन क्षेत्रों की वास्तविक भाषा सीखनी और बोलनी रही है। इनमें सगढ़ी और चंबलपुरी की स्थिति कहीं है। इन क्षेत्रों की सामान्य भाषा की स्थिति भी कहीं रही है। वे कहीं स्थिति में हिन्दी स्थिति के। अतः अदालतों में भाषा और कहीं क्षेत्रों के प्रचलन की सुविधा दी गई, जिससे भाषा प्रचलित हुई। यह क्षेत्रों अर्थव्यवस्था के लिए है कि कहीं के प्रचलन से भाषा को क्षति पहुँची।

कहीं के क्षेत्रों के वास्तविक अदालतों में नहीं, बल्कि अधिकार और भाषा से सीधे सम्पर्क से सम्पर्क कारणों के प्रचलन का कार्य साहजिकिलास ड्रेस में किया। सुविधा की रीति कहीं में प्रचलित हुई। इससे वास्तविक अदालत के प्रचलन से हिन्दी भाषा में सुविधा मिली। यह ड्रेस बिहार का प्रचलन ड्रेस था, जिसने कहीं में प्रचलन प्रचलित। अदालत में हिन्दी के प्रचलन में इस ड्रेस का वास्तविक वास्तविक योगदान था।

सन् 1837 ई. के अदालत निर्णय के बाद बिहार की अदालत स्थिति और अदालत के वास्तविक कारणों के रूप में हिन्दी की अदालतवादी वास्तविक करने लगी। सन् 1840 ई. तक इस विषय में प्रचलित नहीं हुई। अदालत बिहार की हिन्दी भाषा अदालत की अदालत के अदालत के लिए कहीं स्थिति का प्रचलन शुरू कर दिया गया सन् 1840 ई. तक अदालत को कहीं तक नहीं हुआ। अदालत की बात यह भी कि सन् 1877 ई. में बिहार के अदालत का निर्णय लेकर अदालत मुद्रावादी अदालत का अदालत अदालत हुआ।

बिहार के अदालतों में स्थिति का वास्तविक हिन्दी होने का हिन्दी में स्थिति की अदालतवादी हुई। साहजिकिलास ड्रेस ने इस अंदरूनी अंदर अंदर अदालत-प्रचलन का भी प्रचलन किया। इस अंदरूनी की स्थिति की अदालत प्रचलन से बिहार में प्रचलित थी। साथ ही इन अदालतों अदालत-प्रचलन में एक अदालत स्थिति किया। साहजिकिलास ड्रेस की स्थिति की अदालत-प्रचलन के अदालतों में अदालत स्थिति अदालत अदालत स्थिति अदालत अदालत, अदालत अदालत, अदालत अदालत स्थिति अदालत स्थिति और अदालत अदालत के अदालत अदालत है। अदालत अदालत स्थिति की अदालत में 'अदालत अदालत' (सन् 1870 ई.) 'अदालत अदालत' (सन् 1882 ई.) और 'अदालत अदालत' (अदालत) प्रचलित है। अदालत अदालत अदालत अदालत के अदालत को अदालत किया गया है जिससे अदालत अदालत को अदालत में सुविधा होती है। इन अदालतों के अदालत पर अदालत की अदालत के अदालत अदालत से अदालत अदालत है। अदालत अदालत एक अदालत इस अदालत है, जिसमें अदालत अदालत के एक अदालत को अदालत अदालत

एक-दूसरे की नीला-नीला आँखों में एक-दूसरे का चेहरा था ।”

वे एक-दूसरे को देख रहे, धीरे-धीरे आँखें मूंदीं ।

सोने-सोने-सोने है, सोने-सोने का चेहरा ।

मौन्य मल्लिकार्जुन को जब वे निहार कर ठहरे तब उनके चेहरे में एक विशिष्ट भाव । वह पुरस्कार जीती और दंपत्य की दोनों निगाहों में झलक रही थी।

मल्लिकार्जुन ने जब वे आँखें मूंदीं तब वे आँखें मूंदीं इतिहास में यह लिखा था ।

मल्लिकार्जुन इतिहास में था : मल्लिकार्जुन इतिहास में था

मल्लिकार्जुन का नाम मल्लिकार्जुन -10

15-3-84 (1984)

मल्लिकार्जुन

मल्लिकार्जुन और मल्लिकार्जुन की निगाहें । जब एक-दूसरे को निहार कर ठहरे तब वे आँखें मूंदीं ।

एक-दूसरे को निहार कर ठहरे तब वे आँखें मूंदीं ।

मल्लिकार्जुन और मल्लिकार्जुन की निगाहें । जब एक-दूसरे को निहार कर ठहरे तब वे आँखें मूंदीं ।

मल्लिकार्जुन - इतिहास

मल्लिकार्जुन :

1. डॉ. मल्लिकार्जुन इतिहास, मल्लिकार्जुन इतिहास में मल्लिकार्जुन का नाम मल्लिकार्जुन ।

2. डॉ. मल्लिकार्जुन इतिहास, मल्लिकार्जुन इतिहास में मल्लिकार्जुन का नाम मल्लिकार्जुन ।

3. मल्लिकार्जुन इतिहास, मल्लिकार्जुन इतिहास में मल्लिकार्जुन का नाम मल्लिकार्जुन ।

4. डॉ. मल्लिकार्जुन इतिहास, मल्लिकार्जुन इतिहास में मल्लिकार्जुन का नाम मल्लिकार्जुन ।

5. डॉ.

6. डॉ.

7. डॉ.

8. डॉ.

9. डॉ.

10. डॉ.

11. डॉ.

विवाद से जोड़ना है तो इसके लिए कौनो ही सबसे उपयुक्त विधि हो सकती है। यहाँ का फलसौ विधि का इसमें है, यह अभी भी हिन्दू एक मुसलमान के बीच क्यों नहीं हो सकती है। यद्यपि कौनो हिन्दू और मुसलमान एकमे तर्काग्रित हैं।

अतः हमें इससे यह होना है कि एक व्यक्ति का धर्म किन गण है कौनो ही सबसे अधिक या तर्काग्रित होने के सम्बन्ध में है। वे क्यों भी मानने अपनी हैं कि कौनो व किन्हीं विवाद में तर्काग्रित है कौनो अवस्था और अन्य अन्तर परिवर्तनीय ज्ञानों में भी तर्काग्रित है।

उपस्थित विवाद को तर्काग्रित करने के उद्देश्यों को मानने वाले हुए अन्तर परिवर्तन एवं और अवस्था को अन्तरागत हुए कौनो ही उद्देश्य को गढ़ है और कौनो को स्थान पर देखकर ही विधि को अन्तरागत की सम्भावना मिलती है। यही काम यहाँ नहीं किन्हीं अवस्था चाहिए और यही अधिक निर्णय है। लेकिन यहाँ पर इससे जोड़ा विवाद कार्य करने होगा क्योंकि यह विवाद हो गया है कि कौनो दस्तावेज (पटवारी पत्र) से कौनो को इच्छा देने की यह अवस्था का दस्तावेजीकरण बहुत उपस्थित हुआ है और इसका अन्तर कौनो विवाद पर भी बढ़ा है। लेकिन विवाद में जोड़ी दूसरी विधि है और यहाँ का स्थानीय संवेगशील की इस होने के कारण 'पटवारी पत्र' की अवस्थागत संवेगशील कार्यों में नहीं हो सकता है। इसलिए यहाँ पर संयुक्त ज्ञान कौनो स्थिति आए, इसका प्रत्यक्ष होना चाहिए। विवाद की ज्ञानी परम्पराओं में यहाँ से कौनो विधि चर्चा होती है और कौनो कौनो फलसौ विधि का प्रत्यक्ष काम होता है। इसलिए कि प्रथम काल में 1879 में फरवरी के स्थान पर संयुक्त को स्थिति किन्हीं गण और इसका कोई काम विपरीत प्रत्यक्ष नहीं बढ़ा, उसी तरह कि विवाद में यहाँ से कौनो कौनो या कौनो को उपस्थित परम्परा की विधि के रूप में सम्भव हो रही है तो कोई काम विपरीत प्रत्यक्ष नहीं बढ़ेगा। (विवाद सम्बन्ध का प्रमाणित, पृष्ठ 46-47, अन्त विवाद सम्बन्ध का प्रमाणित, 1873-74 पृष्ठ-130, अन्तर परिवर्तन और अवस्था विवाद सम्बन्ध का प्रमाणित, 1880-81, पृष्ठ 77-78)।

अन्तर परिवर्तन ज्ञानों और अवस्था में कौनो विधि के सम्बन्ध में जो निर्णय लिए गए, इसका अन्तर पटवारी पत्र ही था। इसके लिए हमें यह सम्भावना मानना होगा कि इन ज्ञानों में पटवारी की विधि किन्हीं अन्तर की जाती थी। अन्तर परिवर्तनीय ज्ञानों में कौनो भी का अन्तर नहीं रहा गया कि पटवारी ज्ञानों को विपुला किन्हीं आए जो कौनो विधि विविध रूप में मानने ही या किन्हीं कौनो ही मानने ही। लेकिन अवस्था में ऐसा किन्हीं गण। अवस्था के सम्बन्धों को गण में कौनो को लेकर कोई विपुला नहीं थी। उन्होंने पटवारी की विधि में कौनो को सम्बन्धों को अधिकृत प्रत्यक्ष। यही इस विवाद में हुआ। यहाँ पर स्थानीय संवेगशील की प्रत्यक्ष थी और अन्तर के दृष्टिकोण को पटवारी पत्र से कोई लेना-देना कौनो और या नहीं होता था। इसलिए पटवारी ज्ञानों में ज्ञानी में संवेगशील दस्तावेज कौनो में सिद्ध करने की अपनी पुनरी परंपरा सम्भव रही। इसका अन्तर यह भी हुआ कि यही पटवारी ज्ञानों में किन्हीं कौनो का रूप होता था।

सरकार की खेती नीति

प्रसिद्ध लेखक 'वील वास' स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि किसी भी देश या राष्ट्र के विकास में उस क्षेत्र की स्थानीय राजनीतिक द्वाय समूहों की भूमिका एवं सरकार की नीति बहुत प्रभाव डालती है क्योंकि इस नीति का सीधा असर स्थानीय निवासी समूह के अंतर्संबंध पर पड़ता है। उत्तर प्रदेश में अंगरेजी सरकार द्वारा अचूक यह भाव नीति का स्पष्ट प्रभाव हिन्दी और उर्दू से संबंध रखने वाले नागरिकों के समूह पर पड़ा। भारतीय लेखकों ने अंगरेज सरकार की इस नीति को सरल शब्दों में फूट डालने और शासन कर्तों की संज्ञा दी और उनके इस व्यवस्था का अर्थ सामान्य जनता बहुत अच्छी तरह समझ भी लेती है। भारतीय लेखकों की इस खोज की ब्रिटिश विद्वान एक डे तक सही ठहरते भी हैं। यानु उनका कहना होता है कि भारतीय लेखक सरकार के नीति विचारों को लिए जिम्मेदार तथ्यों को जान-बूझकर देखने की कोशिश नहीं करते हैं। अपने उदाहरण के रूप में बताते हैं कि तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा वर्ष 1900 में अंगीकार किए गए भाषा नीति किसी भी प्रकार भुजा, शोषण या अन्य नकारात्मक सोच नहीं था। अपने उदाहरण को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं कि मैकडोनेल्स द्वारा भाषा के संबंध में बार-बार नीति में परिवर्तन किया जाना इस बात का सूचक है कि इस संबंध में नीति निर्माताओं के समूह पर्याप्त आश्चर्य नहीं थे और निर्णय लेने के लिए आवश्यक आंकड़े भी नहीं थे।

ब्रिटिश पत्रिका 'होर' ने निर्णय लिया कि खेती और नैसर्गिक संसाधन क्षेत्र में स्थानीय नीति के रूप में जारी हो रही। अवध में यदि कौंधी को राजकीय नीति का दर्जा दिया गया हो इसके पीछे यह उद्देश्य नहीं था कि स्थानीय जनता को उर्दू-हिन्दी-बेचनागरी कौंधी के मसल्लों पर उत्साह उत्पन्न कर और उनसे ही वेमनस पैदा कर दिया जाए। कृष क्षेत्रों का नहीं है कि वे नीतियाँ और निर्णय स्थानीय क्षेत्र के संबंध में परम्परा सम्पन्न का अपमान, परस्पर गलत खोज, गलत चारण के कारण लिए गए।

प्राथमिक शिक्षा और कौंधी लिपि

इन अलग-अलग इन स्थितियों पर विचार करते हैं कि अंगरेज सरकार के तत्कालीन अधिकारी यदि उत्तर प्रदेश में उर्दू को प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए तो क्या परिणामकारी होती और यदि कौंधी को बनाया होता तो क्या स्थिति होती। यदि नगरी के बच्चे कौंधी को शिक्षा की शासकीय लिपि के रूप में मान्यता दी होती तो कौंधी को समझ बाड़ी स्थान मिले जो आज की दुनिया में उर्दू को है। यद्यु नगरी के पक्ष में जो नागरिक समूह दायव बन रहे थे वे कुछ अधिक ठग हो जाते। लेकिन नगरी लिपि के माध्यम से सरकार द्वारा शिक्षा प्रसार की जो योजना बनी थी उसके कार्यान्वयन में कोई रुकावट अवश्य आ जाती।"

मसुदा: वर्ष 1840 में ही इस योजना का अन्तर्गत प्रसिद्ध शिक्षक कैरोटाईन मोंटगु और उनके छात्रों की टोली द्वारा खोजा जा चुका था। यदि सरकार के पदाधिकारी हिन्दी के संबंध में

निर्वास होने से कोई भी इकाई-इकाई भटकती तो हिन्दी आज इस स्वरूप में नहीं मिलती। डॉ. छापील कहते हैं एक जलान्ध्र भ्रमण में विकसित होती है। यह भी स्पष्ट है कि इसी समय कोई भी जो १९५५ में डॉ. नीलकण्ठ ने कोई भी साधनपूर्ण निर्वासन किया होता तो आज किसी भी यह स्थिति नहीं होती, कम से कम डॉ. ने अधिक किसी खननकारों की मंजूरी आवश्यक नहीं।

कीर्ती पान्थी प्रेरणा की उपलब्धिबोधित व्यवस्था है और उनकीर्ती और कीर्ती पान्थी के अन्तर्गत
 कर्ती के कीर्ती विधि का प्रयोग दिव्य व्यापकता और कीर्ती का किन्ना करते थे । उन्तर पान्थी
 कीर्ती और कर्ती के किन्ना के अन्तर्गत एवं पान्थी करते थे । यह किन्ना कई दशकों तक
 रही । कीर्ती किन्ना की अन्तर्गत विधि की रही ।"

एक डॉ. के पक्ष में था। हिन्दू का ही दूसरा वर्ग हिन्दी के बोलने वाली बोली के पक्ष में था। कागरी लिपि के प्रयोग में भी यही स्थिति थी। कागरी लिपि के बदले एक ब्रह्म डॉ. की सलाहपत्री हो रही थी जो वे दूसरी ओर बोली की और उनके अपने-अपने डॉ. थे।¹

हिन्दू का दोसरा वर्ग जो हिन्दी के पक्ष में खड़ा था, अंततः विजयी रहा। लेकिन हिन्दू का यह वर्ग अपने पक्ष में संपूर्ण समुदाय को नहीं कर सका। हिन्दू का वर्ग डॉ., कागरी बोली, ब्रजभाषा, हिन्दी, कागरी बोली के पक्ष में विभक्त हो गया था और एक वर्ग दूसरे वर्ग पर अपना डॉ. डाली करता चाहता था। हिन्दू और मुसलमान का वर्ग डॉ. कागरी से लगाना होने के कारण इसके पक्ष में अपना डॉ. रखा था।²

जब एक लिपि की यह समस्याएँ काफी दिनों तक चली। हिन्दी आंदोलन के शुरू होने के पहले यह विचार आरंभ हो गया था। कमिला में कागरी बोली के सामने ब्रजभाषा का बड़ा लगभग जगह होता था रहा था। वर्ष 1880 तक इस विचार में कमिला से मिलते हैं परन्तु आधुनिक आंदोलन का वर्ष 1920 में आयोजित होने के बाद ब्रजभाषा कागरी चढ़ती चली गयी। कुछ छोटी स्थिति कागरी का प्रचंडी लेखन रूप देखी की हुई, लेकिन जगह के स्थानांतरण के दिन एक कागरी बोली, ब्रजभाषा एवं बोली ब्रजभाषा के बदल जागैर से स्थिति होने चली गयी।³

1.

ब्रजभाषा एवं कागरी के समुदाय एक अनेकों स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। हिन्दी के समर्थकों के प्रयास होने विचारण में आखिर हिन्दी के किस स्वरूप का चयन किया जाए। ब्रजभाषा कागरी चली या हिन्दुस्थानी। हिन्दी आंदोलनकारियों में मतभेद नहीं था, यही स्थिति निर्णय की थी। कागरी का प्रचलन और लोकप्रियता देखी के मुकाबले बहुत कम थी। स्थिति गंभीर हो गयी कि जगह के स्थान पर ब्रजभाषा का चयन किया गया और देखी के मुकाबले कम लोकप्रिय कागरी लिपि का भी चयन किया गया।⁴

ब्रजभाषा और अनेकों आंदोलनकारियों के समुदाय मान्यताक हो चुकी थी। देखी के प्रयोग में भी कई तरह के रूप स्थाने आए। एक वर्ग के लिए देखी अठिन थी, दूसरे के लिए अठिन। कोई देखी के परंपरागत स्वरूप को अनुकरण रखने के लिए अठिन थे जो कोई देखी के स्वरूप में कोई परिवर्तन करने हुए इसके अठिन संस्करण के पक्ष में थे।

सरर बोर्ड संसद में वर्ष 1836 में अठिन कागरी चली हुए जगह कि कागरी लिपि का लगे-लगे एवं समर्थनीयताक प्रयास में प्रचलित किया जाए। लेकिन इस अठिन का प्रचलन जगह हो जगह सरकारी न इस अठिन का रोक लग्न दिया और नया अठिन जारी कर दिया गया कि किसी भी व्यक्ति पराधिकारी द्वारा कागरी लिपि का उपयोग नहीं करेगा।⁵ जगह कि जगह सरकारी द्वारा इसके लिए विशेष अनुमति न दे दी जाए। इस प्रयास में अठिन सरकार और उत्तर परिषद जगह के बीच कई चरणों के पर प्रचलन हुए और अठिन लिपि, कागरी लिपि कि इस जगह के अधिकतर व्यक्ति पराधिकारी डॉ. जगह चर्च-चर्चा की गयी। पक्ष में हैं। सरकार के इस निर्णय के बाद कागरी हिन्दी आंदोलन को समर्थनीयताक लिपि का लग्न। हिन्दू मुस्लिम के बीच एक विचार एवं अंततः अठिनकारियों के निर्णय के बीच

हिन्दी सरकारने संबंधी प्रतिबोधित परिचय पढ़ती जाती गयी। उर्दू-फारसी को इस अवधि तक एकदलीय संरक्षण प्राप्त था। फरान्सीसी अफिम भी उर्दू-फारसी के पक्ष में बहुत अधिक नहीं थे। उन्नीसवीं सदी की पूर्वार्ध तक कोई भी हिन्दू संगठन अवकाश हिन्दी के पक्षधरों का संरक्षण नहीं दिया। एवम् हिन्दी भाषा के गुणों उपयोगिता के संबंध में मुझा इतर अवधि तक रखने की कोशिश रखता था। इसलिए इस अवधि तक संस्कृतिक रूप से भी हिन्दी का हिन्दुओं की नहीं थी। फरान्सीसी अफिम नगरी लिपि को अपने कुल की संरक्षण करने में अविश्वस का संबंध अंतर हो गया था। इस समय तक हिन्दी, जिसे खरी खोरी हिन्दी कहा गया, का कोई भी भाषा-ओ-विचार नहीं था। यदि कोई उर्दू से हिन्दी को अलग करने की बात करता तो इसका मत अर्थ निकालता जाता कि हिन्दू और मुसलमान को अलग बिधा था था है। ऐसी हिन्दी को 'सुदूर हिन्दी' अथवा 'संस्कृतिक हिन्दी' कहा गया।

इसका के अधिकारता होने की भी लिपि का ही प्रयोग करते थे। विचार एवं उत्तर अविश्वस को के अधिकारता संग, इनमें उर्दू भाषा संग भी शामिल थे, खरी खोरी के संग का प्रयोग कावित्व में लिए और लिपि के लिए नगरी के संग का कोई का प्रयोग करत करते थे।

संस्कृत केवीहोरी और खोरी

संस्कृत के खरी खोरी के सम्बन्ध यह प्रमाण कि न्यायपालन एवं राजन की न्याय और लिपि के रूप में विभाजित करने का उद्देश्य। सर्वप्रथम संस्कृत भाषा और लिपि का विचार किया गया। खोरी के विरोध में यह तर्क दिया गया कि इस भाषा के कई खोरीय भेद हैं। संस्कृत में नहीं होने के कारण इसे न्यायपालन की भाषा बनाना कठिन है क्योंकि यदि इसे न्यायपालन की भाषा बनायी जाती है तो न्यायपालन में इसके खोरी से संबंधित कठिनाई उत्पन्न और ऐसी स्थिति में प्रत्येक खोरी के लिए अलग अलग पढ़नेवाले को न्यायपालन में खोरी ऐसी होगी। न्यायपालन का दूसरा तर्क यह था कि यदि खोरी अथवा हिन्दी को न्यायपालन की लिपि बनाई जाती है तो फारसी को सुलभ में हीन गुण अधिक समय इसे लिखने में लगने। उक्त अविश्वस को के खरी न्यायपालन द्वारा इस तर्क की पूर्ण कई कर की गयी।

नगरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दुस्तानी भाषा के संबंध में यह तर्क दिया गया कि इसमें अनेक रूप एवं भेद हैं। और इसका रूप विलक्षण बदलने के साथ ही बदल जाता है और यह कि लिपि के भीतर भी इसके रूप में परिवर्तन होते हैं। इसलिए इस पर विचार करना उचित नहीं है और इसे न्यायपालन की लिपि में स्वीकार करना उचित नहीं होगा। नगरी लिपि को इसलिए भी स्वीकार नहीं किया गया कि इस लिपि में लिखने की गति काफी धीमी होती थी और इसे पढ़ पढ़ा भी कठिन माना जाता था। एक और खरी नगरी के संबंध में कहा गया कि इसके अक्षरों में अस्पष्टता नहीं पाई जाती थी और अलग-अलग अक्षरों में अक्षरों को लिखने की वृद्धि अलग-अलग थी। खोरी लिपि के संबंध में गंधी टिप्पणी यह की गयी कि खोरी लिखने में खोरी इस अवकाश नहीं कराती जाती है और इसके लिखने पर के अविश्वस कहना नहीं हो सकता है।

निर्णय सामान्य विधि से कम नहीं है। इसी निर्णय से हिन्दू और मुसलमान के बीच के संबंध में बहुत उपयुक्त होना प्रारंभ हो गया क्योंकि पूर्ण की स्थिति ऐसी नहीं थी। साफ़कर वर्ष 1900 में अंग्रेज सरकार की आज्ञा संबंधी योजना इस संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण है। अंग्रेज सरकार मैकडोनेल कोलकाता हिन्दी और सिन्धु के हिन्दू सैली को लेकर काफी प्रभाव से और उसके द्वारा हिन्दू नए निर्णय अपने ही निर्णय से उत्तर होते थे। जेम्स मैकडोनेल ने अपनी को संबंध में सींगर और मेरपुर क्षेत्र में जो निर्णय सिन्धु नद की कम लोगों को अचरम में डाला। कीन्ही विधि के बारे में मैकडोनेल मैकडोनेल का अन्वय क्षेत्र में सिन्धु गन्ध निर्णय काफी की निर्णयों की अन्वय में नहीं आ सकता, ऐसा अन्वय प्रत्यक्षता अन्वयकों का था है। कीन्ही को संबंध में हिन्दू नए निर्णय से भारतीयों का एक दूसरे पर से विचारण कम हुआ। विस्तरेक्यों ने ऐसे का की उत्तर कि है कि प्रत्यक्षता निर्णयों के लोको हाकिमों के विचारों में कम की स्थिति का अन्वय उत्तर पर अन्वय का अन्वय, एक दूसरे के विचारों के अन्वय की स्थिति और उसके अन्वय हाकिमों की अन्वय का अन्वय था।

वर्ष, 1893 में सर एंथोनी मैकडोनेल लेफ्टिनेंट गवर्नर बनकर भारत आए। मैकडोनेल ने सिन्धु में काफी को संबंध में और निर्णय सिन्धु और इसे प्रत्यक्ष एवं अन्वयण की विधि कम ही गई। इसके द्वारा लिए गए निर्णय से प्रत्यक्ष प्रदेश के लोगों में अन्वय अन्वय। मैकडोनेल सिन्धु-अन्वयण को हीरे पर आए और काफी प्रचारिणी सभा के सदस्यों ने किता समय में एक उन्वय अन्वयण की अन्वय की। मैकडोनेल ने इस बात में काफी की दिखाने कि नए को करते हिन्दी को प्रत्यक्षता सभा एवं अन्वयण की विधि सभा का, जन्म इसके लिए उन्होंने हिन्दी की अन्वय की का निर्णय करने से अन्वय किता।

1896-97 और 1898 में प्रदेश में नए बीच अन्वय और सुन्ध ने मैकडोनेल की अन्वयण रखा और वर्ष, 1898 में काफी प्रचारिणी सभा के प्रतिनिधित्व पुन मैकडोनेल ने किता। इस प्रतिनिधित्व में कम सभी लोग हिन्दू ही थे। वे अपने हाथ में जो हाथ से गए थे हाथों हाथों हाथों की थे। प्रतिनिधित्व में किता के कम वर्ष, 1899 में मैकडोनेल ने अन्वय की सुन्ध-अन्वय के लिए अन्वय की का दिख विस्तार अन्वय इस गवर्नर विधि और हिन्दी सभा को प्रत्यक्षता एवं अन्वयण में अन्वयण का रखा सभा ही गया।

वर्ष 1900 में काफी विधि से संबंधित निर्णय

वर्ष 1900 में लेफ्टिनेंट गवर्नर ने एक अन्वय विस्तार किता अन्वय का था कि काफी विधि की नए को सन्ध प्रत्यक्ष ही गई। मैकडोनेल इस संबंध में राज्य के प्रांतीय अन्वय बोर्ड अन्वय अन्वयण को अन्वय अन्वयण और अन्वय की अन्वय अन्वयण से सन्ध सिन्धु और अन्वय की का दिख। लेफ्टिनेंट गवर्नर ने कम भारत सरकार से सन्ध किता गया तो इसका अन्वयण का हुआ कि एक प्रयोग के कम पुन-दुन्ध अन्वय विस्तारण यन्त्र। वर्ष, 1899 में प्रांतीय अन्वय बोर्ड से लेफ्टिनेंट गवर्नर ने सन्ध यन्त्र और सृष्टि किता कि पूर्ण प्रत्यक्ष अन्वयण और अन्वयण में काफी विधि की सन्ध किता का था। वर्ष, 1900 में अन्वय सन्ध को सिन्धु नए का में किता किता गया कि इस क्षेत्र के विचारिणी की सुन्ध

कार्यवाही, अन्तर्गत से सम्बन्ध से परिचित हो गये । यदि सम्भव में सरकार की पूरी योजना है तो कम से कम पूर्वी विभाग में निर्दिष्ट रूप से नगरी के बदले कीमी को मिलने सम्भव सरकार तभी करिग ।

संविधान द्वारा परिचय प्राप्त और अन्तर्गत में ही टी.टी.टी. के विभाग और अन्तर्गत इकाईयों का कोई ध्यान नहीं रखा गया । अर्थात् 1900 में नए अन्तर्गत जारी कर दिए गए और अन्तर्गत कीमी को कोई ध्यान नहीं दिया गया । सरकार का यह निर्णय सरकार अन्तर्गत में मुद्दे लाने और हिन्दी नगरी अन्तर्गतों के बीच सरकार विरोध की स्थिति पैदा कर दी ।

सरकारी कार्यवाही विधि निर्देशक अन्तर्गत निर्देशक और इस तरह के चेन्ने में मुद्दे लाने का एक बड़ा मुद्दा था जिसका हिल कारती (उद्) निर्देश के द्वारा वा ही स्थापित था । भारत नगरी निर्देश के अन्तर्गतों का अन्तर्गत इन चेन्ने में नहीं था । अन्तर्गत कारती (उद्) अन्तर्गतों द्वारा जारी करों पर कि सरकार और स्थापना की निर्देश कारती (उद्) करी गई । भारत सरकार द्वारा वर्ष 1900 में दिए गए निर्देश इन वर्षों के हिन्ने के एकदम विरुद्ध थे । भारत इस का कार्य भी विचार नहीं किया गया । कीमी निर्देश को अंगीकारा नहीं किए जाने के बाद सरकार ने एक बड़े वर्ग को इन चेन्ने में अन्तर्गत कर दिया । क्योंकि उद् और कीमी निर्देश अन्तर्गतों ही मुद्दा रूप से इन चेन्ने में मुद्दे हुए थे ।¹⁷

इतिहासकारों का मानना है कि सरकार द्वारा प्राप्त एवं निर्देश से संबंधित निर्देश अन्तर्गतों की अन्तर्गत का न ही सरकार एक प्रकार से अन्तर्गत इतिहास द्वारा दिए गए गलत निर्देश थे । इसका कार्यवाही अन्तर्गत की बहुत अधिक गुणवत्ता बढ़ा । यहाँ एवं निर्देश अन्तर्गतों का अन्तर्गत अन्तर्गत में अन्तर्गत रूप से बढ़ा है । इसका अन्तर्गत वाले इतिहासकारों की अन्तर्गत करी है । यह निर्देश भारत की कहानी नहीं है बल्कि संयुक्त दक्षिण एशिया की कहानी है । वर्ष 1947 में ब्रिटिश भारत का अन्तर्गत वर्ष 1955 में भारत के अन्तर्गत वा नए राज्य का अन्तर्गत वर्ष 1965 में भारत के दक्षिणी राज्य में हिन्दी का प्रवेश विरोध वर्ष 1966 में राज्य का अन्तर्गत, वर्ष 1971 में अन्तर्गत का निर्देश द्वारा के वर्षों की अन्तर्गत है जिसका अन्तर्गत अन्तर्गत एवं एवं निर्देश से संबंधित निर्देश है ।¹⁸

वर्ष 1830 में राज्य अन्तर्गत अन्तर्गत की निर्देश कारती के बदले अन्तर्गत कर दी गयी और इसकी अन्तर्गत की अन्तर्गत हो गई । वर्ष 1870 में अन्तर्गत अन्तर्गत में उद् के बदले हिन्दी आ गई और वर्ष 1880 में अन्तर्गत में एवं किया गया । वर्ष 1900 में अन्तर्गत परिचय प्राप्त और अन्तर्गत में उद् का अन्तर्गत हिन्दी से हो लिया ।

अन्तर्गत के अन्तर्गत द्वारा यह एवं अन्तर्गत में लाना गया कि ब्रिटिश अन्तर्गत अन्तर्गत में कई एवं अन्तर्गत है । अन्तर्गत अन्तर्गत की अन्तर्गत अन्तर्गत में इसे बहुत विचार हो सकती है । क्योंकि एवं निर्देश में अन्तर्गत की अन्तर्गत एवं अन्तर्गत के लिए अन्तर्गत अन्तर्गत लाने की विचार करनी पड़ सकती है । दूसरी बात यह भी अन्तर्गत लाने गयी कि अन्तर्गत का हिन्दी में अधिक कार्यवाही अन्तर्गत करने में करीबी की अन्तर्गत कर न कर और गुण अन्तर्गत अन्तर्गत एवं अन्तर्गत है । अन्तर्गत की अन्तर्गत यह भी कि हिन्दी का अन्तर्गत बहुत अन्तर्गत गति से निर्देश अन्तर्गत

लिपि है। उत्तर पश्चिम राज्यों के सरदर बोर्डों द्वारा भी कुछ इस प्रकार की बातों को ही पुनरावृत्ति की गयी। न्यायालयों की यह समझ थी कि हिन्दुस्तानी भाषा और नागरी लिपि को कई उपशब्दाएँ हैं और इसके स्वरूप में परिवर्तन देखने को मिलते हैं इसलिए यह न्यायालय की भाषा का आहवा पाने साधक नहीं है। न्यायालयों ने स्पष्ट रूप से टिप्पणी की कि हिन्दुस्तानी भाषा और नागरी लिपि के इन रूपों में परिवर्तन एक क्रम में एवं यहाँ तक कि एक जिला में देखने को मिलते हैं। ऐसी स्थिति में न्यायालयों की भाषा के लिए यह उपयुक्त जिलकुस नहीं है। नागरी लिपि के बारे में भी यही कहा गया कि यह एकदम धीमी गति से लिखी जानेवाली लिपि है और इस लिपि का यह सबसे बड़ा अन्वय है। इसे पढ़ने में भी काफी कठिनाई होती है और अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। नागरी लिपि के अन्वयों को व्याख्या करते हुए अग्रे कहा गया कि यह टेढ़ी-मेढ़ी ढंग से लिखी जानेवाली है। इसके कुछ अक्षरों में असमानता दिखाई देती है और इसके स्वरूपों में जगह-जगह पर परिवर्तन भी दिखाई देते हैं। नागरी के अन्तर्गत कौंधी के बारे में कुछ अधिक तल्ख टिप्पणी की गयी कि आम जनता कौंधी को बहुत ही बेतरतीब ढंग से लिखती है, पढ़ने में काफी कठिनाई होती है। यहाँ तक भी कहा गया कि दो व्यंजित (ह्रास्व) इस बात पर एकमत नहीं हो सकते कि कौंधी में क्या लिखा गया है।¹²

सरकार की भाषा नीति, कौंधी की कई बहनें थीं - इनमें नडाजनी, मुरिया और सराफा प्रमुख थीं। प्रमुख रूप से व्यापारी वर्ग इस लिपि का अधिक से अधिक उपयोग करते थे क्योंकि इस लिपि की अक्षरों काफी छंटी, लिखने में सुविधाजनक, तक्षित गति से लिखी जानेवाली और व्याकरणिय परेखनियों से दूर थीं। वहीं कारण था कि यह लिपि आम जनता में सबसे अधिक लोकप्रिय थी।¹³

कौंधी की जनता का बीज वर्ष 1847 में पड़ चुका था। इस वर्ष उत्तर पश्चिम प्रांत सरकार द्वारा एक निर्णय लिया गया जिसके अनुसार कौंधी को छोड़कर नागरी लिपि को अग्रगण्य लिपि के ग्रामीण विद्यालयों में शिक्षा देने को सरकारी लिपि के रूप में मान्यता दी गयी। वर्ष 1852 में राजस्व के सरदर बोर्ड द्वारा यह निर्णय लिया गया कि ग्रामीणों द्वारा वार्षिक कागजात हिन्दी में तैयार किए जाएंगे। ज्ञात हो कि इससे पहले ग्रामीण शिक्षा और राजस्व की लिपि कौंधी ही थी।¹⁴

उत्तर पश्चिम प्रांत का शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदन (वर्ष 1856-57, 1857-58)
(पृष्ठ - 32-33)

सरकार की लिपि नीति का व्यापक असर समाज की शिक्षा व्यवस्था पर पड़ा। इसका असर सीधे तौर पर राजस्व से संबंधित कागजात तैयार करने की व्यवस्था पर भी पड़ा। ग्रामीण क्षेत्रों में पूर्व में स्थापित परंपरा के अनुसार भूमि सत्यान का राजस्व से संबंधित दस्तावेजों को तैयार की परिपाटी पर विशेष रूप से पड़ा। उत्तर पश्चिम प्रांत एवं अवध तथा बिहार में बंदोबस्ती प्रणाली में भिन्नता थी, अतएव दोनों राज्यों के ग्रामीण भूमि दस्तावेजों की परिपाटी अलग-अलग रही। शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदन में इन तथ्यों की व्यापक रूप से समीक्षा की

गयी। संज्ञा प्रोविन्सियाल समिति का प्रतिवेदन कलकत्ता से मार्च 1884 में प्रकाशित हुआ और इसके पृष्ठ संख्या 46-47 में इसकी विस्तार व्याख्या की गयी।

विहार की प्राथमिक शिक्षा और कौमी

इस अवधि में विहार में प्राचीन पाठशालाओं की संख्या बहुत अधिक थी और इन पाठशालाओं में छात्रों को कौमी शिक्षा दी पड़ती जाती थी। पाठ्यपुस्तक भी कौमी शिक्षा में ही होते थे। इन पाठशालाओं पर सरकार का सीधे तौर पर नियंत्रण नहीं था और इस कारण सीमित अर्थों में वे पाठशालाएँ प्राचीनों के प्रभावों से संबंधित होती थीं। राज्य का सीधे तौर पर नियंत्रण नहीं होने के कारण किन विषयों की पढ़ाई होती, इसका निर्धारण स्थानीय स्तर पर ही होता था। कौमी की पढ़ाई अनिवार्य होने के पीछे कारण यह था कि उस समय सरकारी काम-काज कौमी में ही होते थे और इसका कोई विकल्प भी नहीं था। कौमी में जनभाषा एवं के प्रमुख होनेवाले सभी सामान्य थे और कौमी बच्चे सम्भव में छोटे स्तर पर ही रहती, लेकिन काम-काज मिलने की सम्भावना होती थी। सरकार की शिक्षा से संबंधित प्रतिवेदन अगले के बाद विहार के प्राचीन पाठशालाओं में कौमी की पढ़ाई का अन्त अधिक बड़ा क्योंकि इस प्रतिवेदन में इस बात पर जोर दिया गया था कि स्थानीय जनता की सुविधा के अनुसार प्राचीन पाठशालाओं में पढ़ाई होनी चाहिए। कौमी के अतिरिक्त कारसी शिक्षा सम्बन्ध में प्रकाशित भी पान्थु फारसी शिक्षा के संबंध में जारी एक सम्मलेन जारी थी कि इसके बावज़ूद हिन्दू एवं मुस्लिम समुदाय के राज्य स्तर के स्तर ही होते थे। परन्तु कौमी की मान्यता, स्वीकार्यता और समर्थन के गहन-गहन, जन-जन में थी। शिक्षा प्रतिवेदन में स्पष्ट रूप से उल्लेखित किया गया कि विहार में कौमी उच्चतम स्तर तक सबसे अधिक लोकप्रिय शिक्षा है। प्रतिवेदन में यह भी स्पष्ट किया गया कि कौमी शिक्षा विहार में ही लोकप्रिय नहीं है बल्कि उत्तर पश्चिम राज्य और अन्य में भी इसकी लोकप्रियता सबसे अधिक है और इस कारण प्राथमिक शिक्षा के लिए कौमी को शिक्षा देने के अलावे कोई विकल्प भी नहीं है।

उत्तर भारत में शिक्षा के कार्य एक जाति व्यवस्था द्वारा चलेते रूप से किया जाता था। इस जाति द्वारा शिक्षा के लिए "कौमी" अक्षरों का प्रयोग किया गया। कौमी देवनागरी की तरह सम्पूर्ण शिक्षा नहीं है और इस शिक्षा में कुछ अक्षरों की और आवश्यकता पड़सुम होती है। पान्थु इस शिक्षा की आवश्यकता करती अधिक है। ठीक उसी प्रकार जैसे अंग्रेजी में हाथ से लिखे जानेवाले और अंग्रेजी में लिखे जानेवाले अक्षरों के हैं। इस शिक्षा का प्रयोग पूरे उत्तर भारत में गुजरात के समुद्री किनारे से लेकर कोसी नदी के तट तक इस शिक्षा का प्रयोग किया जाता था। इस शिक्षा के कुछ स्वरूपों में छोटा छोटा परिवर्तन भी दिखाई देता है। यह परिवर्तन भौगोलिक क्षेत्र विशेष में शिक्षा के प्रचलन और व्यक्ति विशेष द्वारा प्रयोग किए जानेवाले अक्षर पर निर्भर करता है। इसलिए कौमी मूल रूप से राज्य से लिखी जानेवाली शिक्षा है, पान्थु गुजरात और विहार में ब्रिटिश के लिए कोर्ट का विकास किया गया और इस शिक्षा की प्रतिष्ठा भी बढ़ी। विहार में कौमी शिक्षा प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों को पढ़ाई जाती थी जहाँ देवनागरी की शिक्षा अनिवार्य रूप से विस्तारिता समझी जाती थी। गुजरात

में इस लिपि को राष्ट्रीय लिपि के स्तर तक ले जाया गया। हालाँकि मुद्रण में कभी लिपि में छपे किताबों की संख्या बहुत अधिक है, फिर भी इसका प्रचलन काफी कम हो गया है और वर्तमान पीढ़ी ही इस लिपि से परिचित है। दुर्भाग्य से बहुत पुरानी किताबें देवनागरी लिपि में ही उपलब्ध हैं। कभी में अक्षर बहुत साधारण तरीके से लिखे जाते हैं और संयुक्त अक्षरों की लिखावट भी आसानी होती है। हालाँकि संयुक्त अक्षर इस लिपि में बहुत ही कम हैं। बिहार में क्षेत्रीयता के आधार पर कभी लिखी जाती है और मुख्यतः मैथिली, मगही और भोजपुरी शैली में यह लिखी जाती है।¹¹

संदर्भ

1. किस्टोफर आर. किंग, वन लैंग्वेज टू सिक्रिप्ट्स, पृष्ठ-65
2. वही (पृष्ठ-32-33)
3. वही
4. वही
5. वही पृष्ठ-88
6. वही
7. वही-पृष्ठ-97
8. वही-पृष्ठ-130
9. थॉमस जेम्स, लैंग्वेज रिलीजन एण्ड पोलिटिक्स इन नॉर्थ इंडिया
10. किस्टोफर आर. किंग, वन लैंग्वेज टू सिक्रिप्ट्स पृष्ठ-188
11. वही, पृष्ठ-198
12. वही, पृष्ठ-198
13. वही, पृष्ठ-15
14. वही, पृष्ठ-18
15. वही, पृष्ठ-23
16. वही, पृष्ठ-48
17. वही, पृष्ठ-59
18. वही, पृष्ठ-177
19. वही, पृष्ठ-150-151
20. वही, पृष्ठ-176
21. वही, पृष्ठ-181
22. वही, पृष्ठ-185
23. वही, पृष्ठ-148
24. वही, पृष्ठ-153-154
25. वही पृष्ठ-155
26. वही पृष्ठ-1
27. वही पृष्ठ-53
28. वही, पृष्ठ-55
29. वही पृष्ठ-65।
30. वही, पृष्ठ-65
31. जी. एच. प्रियर्सन लिमिटेड सर्वे ऑफ इंडिया भांगलुध-5. पार्ट-2

कैथी का अन्वसान

ब्रिटिश लोकांक मिस्ट्राफर किंग ने अपनी किताब 'वन सैंगवेज टू मिस्ट्रा' में में अन्वसान उन्नीसवीं सदी में 'उत्तर भारत में हिन्दी आंदोलन' अन्वसान में एक बहुत ही विलक्षण हिन्दी प्रत्यक्ष का विश्लेषण किया है जिसका संघन उन्नीसवीं सदी के अंत में हुआ। प्रत्यक्ष में 'महात्मा देवनागरी' अपने ऊपर हुए अन्वसाध के बारे में परिचाय करती है। 'महात्मा देवनागरी' का अन्वसाध है कि "फारसी" की बोटी "वेगम वरु" ठगकी अपने अधिकतर से बंका कर रही है। प्रत्यक्ष के बारे में लोकांक की कल्पना है कि प्रत्यक्ष में एक पात्र "राजकुमारी कैथी" का भी होना चाहिए। राजकुमारी कैथी के माता का नाम देवनागरी है और राजकुमारी कैथी अपनी माँ महात्मा देवनागरी के बचपन में एक शिक्षक पर बैठने का कार्य कर अन्वसर प्रदान कर चुकी है।

कैथी का विरोध का प्रतीक

कैथी की स्थिति के बारे में सरकारी नीति में कोई प्रचार की अन्वसति रही है। उत्तर-पश्चिमी प्रदेश और अन्वसाध में सरकारी पराधिकारी द्वारा कैथी का कार्य का विरोध किया गया। हालाँकि यह विरोध अन्वसाध में कभी बहुत तीव्र या तो कभी धीरे-धीरे भ्रम। एक ही बार विरोध नहीं किया गया। लेकिन विद्वान में ऐसी स्थिति नहीं रही—अंग्रेज अधिकारी विद्वान में इसका इन्वसाध समर्थन करते रहे। हिन्दी के समर्थकों में नागरी लिपि को लेकर धोड़ी छत्रम ही रही। हालाँकि इन्वसाध नागरी की 'बोटी' के रूप में कैथी का संबंधन होना रहा, परन्तु इस संबंधन में अन्वसर को कभी थी, बल्कि कैथी के स्वरूप को नीचा दिखाने का प्रयत्न इसमें था। बाद के दिनों में 'कैथी' अपनी "माँ" के साथ परस्पर हुई, परन्तु इस हार का फलप्रत्यक्ष एक निकला ? कुछ निकला भी या नहीं इस बारे में अभी भी शक हो है। हिन्दी लिखने के

विश्व विम अफरों को चाली-कौकी सिपि से लिखा गया, उन्हीं अफरों को लेकर विचार बनान किया गया था और कहा गया कि इन अफरों को बालक ही कौकी सिपि अपने आप में संभुल नहीं है ।

उत्तर एशियन जोर में कौकी सिपि का सरकार द्वारा विरोध का बीच वर्ष 1847 में ही पड़ चुकी थी । इसी वर्ष कौकी के बदले चाली सिपि को अलग-अलग केंद्रों में विद्यालयों में शिक्षा का प्रारम्भ किया गया । वर्ष 1852 में एडमंड्स के अंदर कोई ने अंदरों जारी किया कि चाली सिपि का प्रयोग हिन्दी में लिखे जानेवाले सभी प्रकार के छात्रों के प्रारम्भ में किया जाए । वर्ष 1870 और 1880 का शिक्षा इतिहास के देखने से स्पष्ट होता है कि सरकार का यह अंदरों भी किस्मों के ही चुका था कि वैसे किसी भी प्रकार की विपुल नहीं करती है जो कि 'कौकी' ही नहीं ही - अर्थात् चाली-हिन्दी का ज्ञान नहीं रखते हैं । इसका कारण अंतर हुआ कि सरकारी विद्यालयों में कौकी और इसके अन्य इस्तेमालों सिपि दूर होते चले गए और विद्यालयों में इसकी शिक्षा बंद हो गई । वर्ष 1900 में जब एडमंड्स एडमंड्स गवर्नर का एंटीनी विद्यालय ने एडमंड्स सिपि के अर्थ में अंदरों जारी किया तो उसे अपने ही एडमंड्स एडमंड्स के प्रारम्भ को एडमंड्स करके पढ़ा जिसमें विचार से चाली की नई की कि कौकी सिपि प्रकार दूर दूर में एडमंड्स की चाली सिपि है ।

अन्त में सरकार की नीति अधिक अर्थ में थी । वर्ष 1871 में अन्त में जब शिक्षा विभाग के पद पर कॉलेज प्रिंसिपल परामर्शित थे । उन्होंने अंदरों दिया कि छात्रों के विद्यालयों में वर्ग के एक, कक्षा के विद्यालयों में वर्ग तीन एक और शिक्षा स्कूल में कठे वर्ग एक कौकी की पढ़ाई नहीं होनी । उन्होंने यह भी अंदरों दिया कि यदि कोई अधिकतर अपने वर्गों को कौकी शिक्षा चाहते हैं तो वे ऐसा कर सकते हैं चाली इसके लिए उन्हें अन्त से नीचे देखेंगे । डिस्ट्रिक्ट विंग ने शिक्षा ई कि कॉलेज की यह शिक्षा नहीं थी कि विद्यालयों में कौकी की पढ़ाई नहीं हो, यह बन्द हो जाए । नीचे से ऊपर को इस और नीचे करके यह तो वे विचारों कि छात्र शिक्षा का अर्थ कि कौकी शिक्षा और चाली शिक्षा एक ही न समझें ।

वर्ष 1975 में, डिस्ट्रिक्ट के बाद वे.वी.नेल्लिपट्टु का शिक्षा के विरोध करने । उन्होंने पुनः कौकी को अन्त में प्रारम्भिक एवं अन्य विद्यालयों में प्रारम्भ करने का प्रारम्भ किया । उन्होंने अंदरों दिया कि वे शिक्षा के प्रारम्भ में प्रारम्भ करने चाहते हैं और उन्होंने यह भी अंदरों दिया कि कौकी शिक्षा और कौकी में गति की पढ़ाई द्वारा अर्थ में नीचे । इसके साथ-साथ चाली की पढ़ाई की होनी चाहिए । उन्होंने कौकी की शिक्षा में चुका को भी प्रारम्भ किए और इस चुका दूर सिपि को प्रारम्भ करने का अंदरों दिया । ऐसा करने से पूर्व वे.वी.नेल्लिपट्टु ने चुके के प्रारम्भ लक्ष्य में कौकी के विद्यालयों के चुका को एकत्र करके और भारतीय शिक्षा सेवा के एक प्रारम्भ की इस आधार पर एक प्रारम्भिक कौकी सिपि विकसित करने का अंदरों भी दिया । नेल्लिपट्टु साइज द्वारा कौकी के विद्यालय में किए गए कार्य आज भी प्रारम्भिक हैं । शिक्षा सेवा के इस भारतीय प्रारम्भिकी द्वारा कौकी के लिखाई के प्रारम्भ का प्रारम्भिक किया गया और सरकार ने यह भी अंदरों दिया कि इस प्रारम्भिक कौकी की पढ़ाई राज्य के सभी विद्यालयों में अर्थ की जाए और ऐसे कार्य

और अंत में

विविधता में एकता भारत की सबसे बड़ी ताकत है एवं सबसे बड़ी खूबसूरती थी। भारत में भाषा की परंपरा है और संक्षिप्त यह अत्यंत पुस्तकित कर देनेवाला तथ्य है। हम भारतीयों को हमेशा इससे गौरवान्वित हो रहते हैं। भारत की भाषायी सर्वेक्षण भारत में प्रचलित भाषाओं की संख्या 179 अंकीय है और वर्ष 1921 में किए गए जनगणना (पृष्ठ -4) से यह बात स्पष्ट होती है कि भारत में 188 भाषाएँ हैं। भारत के प्रसिद्ध भाषाशास्त्री एल.के.बटनॉ के मतानुसार इसकी संख्या 180 है। वर्ष 1981 में किए गए जनगणना के अनुसार दक्षिण परिवार की भाषा तेलुगु, तमिल, कन्नड़ और मलयालम और इंडो-यूरोपियन भाषा परिवार की भाषा हिन्दी, उर्दू, बंगाली, गुजराती, उड़िया, पंजाबी और आसामी को यदि छोड़ दिया जाए तो 93 प्रतिशत आबादी इसी भाषा का उपयोग करती है। वर्षभर में छोटे और बड़े हिन्दी को छोड़कर एक भाषा-एक राज्य की परंपरा है। उर्दू एक राज्य की शासकीय स्थिति है। हिन्दी राष्ट्रभाषा है और यह सभी जगहों पर बोली जाती है।

भारत में भाषा के आधार पर राज्य गठन की आधारभूत वर्ष 1921 में ही आयी जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा इसकी स्वीकृति मिली। वर्ष 1947 में आजादी मिलने के बाद भारत सरकार ने भाषायी राज्य अधिकांश की स्थापना इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु की। दिसम्बर, 1948 में किए गए अपने प्रतिवेदन में आयोग ने स्पष्ट किया कि देश के हित में यह अधिक नहीं होगा। परन्तु जन विरोध और जन आंदोलन ने तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की इस बात के लिए विवश किया कि तेलुगु बहुमुख क्षेत्र को लेकर आंध्रप्रदेश का गठन किया जाए। वर्ष 1952 में ऐसा किया गया और वर्ष 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना की गयी जिसका उद्देश्य इस विवाद को सुलझाना था। प्रतिवेदन के कुछ ही समय बाद वर्ष 1955 में भाषा के आधार पर निर्मित राज्य अस्तित्व में आ गए।

चीनी के इतिहास की चर्चा से स्पष्ट होत है कि इसका इतिहास गौरवमयी रहा है और यह सभी जनताओं की है। वर्तमान बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, संस्रभान एवं गुजरात राज्यों में पूर्णतः, या अंशतः चीनी लिपि प्रचलित थी। इनका ही नहीं इन राज्यों से आसपासों अधिक देश के बाहर भी चीनी में लिखित दस्तावेजों से यह और इसे सुनिश्चित भी रहता गया। देवनागरी लिपि के प्रचलन के साथ ही चीनी का पतन उत्तरण हो गया। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के साथ देवनागरी के विकास एवं सम्पन्न की जा रहा गया। नेपाल एवं सरकारी दस्तावेजों में चीनी का पता इससे पूर्व ही होना अरुण हो चुका था। पा-गु उपलिपि के रूप में इसकी मान्यता कुछ दशक पूर्व तक बनी रही। सबसे अक्षर्य की बात तो यह है कि पिछले दो सौ वर्षों के इतिहास में हमको ही देश की संप्रति सम्पन्न के सामने आता जिसने चीनी के विकास अभिमानक के संबंध में सरकार के सम्पन्न दस्तावेज प्रकाश किए हैं।

की भी समझेंगे कि अगर हम इसके अंतर्गत पर पर्यावरण का समझ आता है। अतीत की दुनिया का एक बड़ा चीनी के समर्थन में और दूसरा बने चीनी के विरोध में रहा है। चीनी का समर्थन अत्यंत विरोध क्यों किया गया इस पर विस्तृत अध्ययन होगा जारी है। चीनी के समर्थन के कारणों के बारे में अध्ययन होकर पता चलेगा।

यदि बिहार और उत्तर प्रदेश की संसद में दोनों से १९५५ की कोई एक हाउस चयन कीयी में शिक्षित राजस्वधन न हों लेकिन यह कम आयस्वर् की बात नहीं है कि तीन से चारों के अधिक समय तक वारंशिक के रूप में जारी कीयी के राजस्वधन को करने की पुनर्जागरण में नहीं मिलने। यदि यह कहा जाए कि कीयी जन्मेजालों की संख्या अब गिनती की हो या नहीं है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

इसकी आवश्यकता नहीं है कि कौमी को चरित्रों के रूप में व्यवस्थित किया जाए। देशवासी शिक्षा को सर्वोच्च उच्च शिक्षा में से है और देशवासी को अप्रत्यक्ष, इसके विचारों में संगठन देना गौरव का काम है। जगत् कौमी को छोड़ देना भी उचित नहीं है। कौमी का उद्देश्य न तो देशवासी हो सकता है और न देशवासी का उद्देश्य कौमी। यदि आप कौमी जनजातों की इतनी समझें हैं तो यह सिर्फ इसलिए कि हम और किसी का उद्देश्य नहीं था था है + कौमी में लिखे हुए लक्ष्यों वस्तुतः हमारे समाज में व्यवस्था है और यदि हम कौमी नहीं मान सकेंगे तो उन वस्तुतः को पक्ष भी नहीं सकते आनन्दित भी नहीं हो सकते। देशवासी चरित्रवादी को कौमी सोझा एकदम असमान है और मैं तो चाहूँ कि यह कुछ नियत-बंदों का ही खेल है। यदि कौमी को मान्यकारी मिल जाए तो काम से काम कौमी में लिखित वस्तुतः, कौमी, चरित्रवादी का यह सुविधा तरीकों से रहा सकते हैं। अन्ततः, यह हमारे लिए उचित नहीं, बल्कि हमारे अपने का उद्देश्य को छोड़ें हैं।

सरकार को भी इस विषय में सक्रिय होना चाहिए। विचार विमर्श परिसर में सामाजिक सदस्य डा. (जीपसी) ज्योति दाउ भुई गप कार्यक्रम प्रमन को उत्तर में सरकार ने संवाद दिया कि यदि इस संबंध में कोई परिसीमा सरकार को समझ प्रस्तुत की जाती है तो सरकार इस क-

संदर्भ ग्रंथ :

1. अक्षर कला, गुणकान्त भूषे, प्रकाशना विभाग, मुम्बई एवं प्रकाशन संस्थान, भारत सरकार, 1972
2. गंगाती सिन्धी और हिन्दी कवियों, डॉ० कलक शर्मा, हिन्दी-गंगाती सम्बन्धित विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1973
3. संस्कृत काल का इतिहास, ईश्वरचन्द्र उषी, खण्ड-1। एवं खण्ड-2, राजा प्रो० सिन्धी संस्थान, लखनऊ
4. भारतीय अर्थशास्त्र और हिन्दी, 'कल्याणकान्त शर्मा' द्वारा रचित डॉ० सुनीलकुमार शर्मा, लखनऊ प्रकाशन, दिल्ली, 1974
5. गंगा सिन्धी का इतिहास, श्री इतिहास प्रकाश 'भारत', लखनऊ प्रकाशन, दिल्ली, मुम्बई, 1975
6. कल्याणकी श्री सामाजिक गुणवत्ता, लखनऊ गुणवत्ता
7. 'भारत का भाषा संशोधन, श्री लखनऊ विश्वविद्यालय, खण्ड-3, खण्ड-2
8. व. कल्याण शर्मा द्वारा रचित, लखनऊ प्रकाशन
9. विश्वविद्यालय, भारत-मुम्बई, 1965, श्री लखनऊ प्रकाशन
10. लखनऊ भाषा का इतिहास, डॉ० लखनऊ प्रकाशन, मुम्बई
11. गंगाती शर्मा का इतिहास, डॉ० लखनऊ प्रकाशन 'भारत'
12. विश्वविद्यालय लखनऊ श्री लखनऊ, श्री लखनऊ प्रकाशन
13. लखनऊ शर्मा का इतिहास, डॉ० लखनऊ प्रकाशन
14. लखनऊ व. लखनऊ
15. लखनऊ मुम्बई एवं लखनऊ प्रकाशन
16. लखनऊ मुम्बई, लखनऊ प्रकाशन
17. डॉ० शर्मा का इतिहास, डॉ० लखनऊ प्रकाशन
18. लखनऊ शर्मा एवं लखनऊ प्रकाशन डॉ० लखनऊ प्रकाशन
19. भारतीय प्रकाशन विभाग, लखनऊ गंगाती शर्मा द्वारा रचित, 1974
20. लखनऊ प्रकाशन, श्री लखनऊ प्रकाशन
21. लखनऊ प्रकाशन, श्री लखनऊ प्रकाशन
22. लखनऊ प्रकाशन, श्री लखनऊ प्रकाशन

1. लिपि विज्ञान और भाषा की लिपि ओप प्रकाश पाटिका 'अनुवाद'
2. भावसेवा इन स्टोन, एरस्ट डब्लु हाफर
3. भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेन्द्र नाथ शर्मा
4. एन डिस्टोरियन्स एप्रोच टु रिलिजन, आर्नल्ड ट्युन्बी
5. वी आर्ट ऑफ रीडिंग, यूनेस्को
6. न्यू लाइट ऑन दी इंडियन सिविलाइजेशन
7. सिंधु लिपि का रहस्योद्घाटन, के.एन. शर्मा, डा. फतेह सिंह
8. कर्नल ऑफ एनसिएन्ट इंडिया ए. कर्नल
9. भाषा विज्ञान डा० पोस्त्रनथ तिवारी
10. सामान्य भाषा विज्ञान, बाबुराम सम्सेन
11. वी डिक्शनरी ऑफ इंडियन डिरोगिज़्मस
12. डिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर
13. एलिमेंट्स ऑफ सावध इंडियन पालिग्राफी, ए०सी०बर्नल
14. इंडियन पालिग्राफी, कूलर, संपादक प्रो०एफ० क्लीट
15. इंडियन एंटीक्वेरी, जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
16. ओरिजिन एण्ड डेवलपमेंट ऑफ बंगाली लिपि, डा० सुनीति कुमार चटर्जी
17. डिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर, डा० चमकाना मिश्र
18. अव्ययसंग्रह ऑफ लिपिबद्धिक एनालिसिस, डा० बी० कर्नल एवं बी०एल० ट्रेनर
19. सामान्य भाषा विज्ञान, डा० बाबुराम सम्सेन
20. वि डिस्ट्री ऑफ अल्फाबेट, एडवर्ड कर्नल







लेखक परिचय



नाम : वैराग सल्ल रास

पता : श्रीमती मोहनराव देवी

पिता : श्री मोहनराव सल्ल रास

जन्म : 15 जनवरी, 1968

जन्म स्थान : रायगढ़, प्रमुखी (मिडार)

शिक्षा : एम=ए= (राजनीति शास्त्र), पी=जी= डिप्लोमा (पत्रकारिता एवं समाचार, मानव संसाधन विकास)

प्रकाशित कृतियाँ : लोकमान्य (मिडिला निवाह पद्धति का अध्ययन)

सेवा : समाचार विभाग (काठ सरकार), महाराष्ट्र प्रदेश विधान सभा

समाचारिक कार्य : पटना के 30 सरकारी पत्रिकाओं का सम्पादन, अखिल बर्ग के कौशल विकास, मिडिला विद्यार्थी, मिडिला का 10 वर्ष संस्कृति के संरक्षण एवं विकास के क्षेत्र में सक्रिय

संज्ञा : परिकल्पना अधिकारी, मिडार विधान परिषद्

संपर्क : बी-402, श्रीराम कुँव सफ्टवेयर,

प्लॉट नंबर - 4, मोरानगर, को- कोलरीनगर,

पटना - 800 004, दूरभाष : 094306 06724

ई-मेल: bld412@gmail.com

कैथी लिपि

अ आ इ इ उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ छ
 च ज ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य
 र ल व श ष स ह का कि की कु कू के कै को कौ
 १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९
 १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

वाणिज्यिक सम्पर्क :

विधि

कावेरी बाकेंट, एस०पी०आई०
एडीएम के सामने, आशिषाना,
दीपा रोड, पटना-25
मो०-9835259639, 9905635930

011-50746

ईस्टर्न बुक एजेंसी

305, बुद्ध मार्ग (तीसरी मंजील)
भक्तोक सिनेमा के बगल में
बुद्ध मार्ग, पटना-800 001
फोन-933-4089/107